* ओ३म् *

❀ प्राचीन हिंदू मातायें ❀

शिव की दो मातायें।

शिव अभी बहुत छोटी आयु का था कि उसकी माता का देहान्त होगया। नन्हे बालकको उस समय इतनाभी बोध नहीं था कि वह अपनी इस महाहानि को समझ सकता केवल तीन वर्ष की आयु थी। उसे कोई ज्ञान नहीं था कि मरना और जीना किसको कहते हैं। नदी के किनारे एक पहाड़ के समीप चिता बनाकर माता जी की लोथ दग्ध करदी गई। संध्या के समय शिव ने अपनी तोतरी भाषामें नानी जी से पूछा दीदी कहां ? शिव अपनी माता को दीदी कहा करता था, नानी जी ने रो कर उत्तरदिया बच्चे! तेरी माता स्वर्ग को गई, ईश्वर ने उसको बुला लिया, नदी के किनारे वह जल कर राख होगई। शिव की समझ में नानी की बात नहीं आई किन्तु वह हक्काबक्का होगया। अभी सूर्य भगवान उदय नहीं हुये थे कि वह नन्हा बालक

विस्तर से उठ अकेला माता की खोजमें नदीकी ओर चल पड़ा । नदी घर से वहुत दूर नहीं थी और पानी भी उसमें नहीं वहता था, वह नदी को लांघकर उस जगह आया जहां चिता जलाई गई थी । उस जगह राख का एक ढेर पड़ा हुआ था, लोग अब तक फूल भी उठाकर नहीं लेगये थे । शिव आकर उसी चिता पर बैठगया और उच्चस्वर के साथ अपनी माता को पुकारने लगा "दीदी तू कहां है आजा मैं अकेला हूँ" दीदी वहां कहांथी जो बोलती उसका अपना ही शब्द लौटकर उसके कानोंमें प्रविष्ट हुआ "दीदी तू कहां है आजा मैं अकेला हूं" सरलचित्त शिव ने समझा कि कोई दूसरा मनुष्य बोल रहा है वह वहां से उठकर इधर उधर वृक्षों के कुंजों में अपनी माता को ढूंढने लगा परन्तु माता वहां कहां थी जो उसे मिलती ! व्याकुल चित्त होकर वह फिर उसी जगह आया और गरम राख की ढेर पर आसन जमाकर रोने लगा । हतभाग्यशिव तुझको माताकी गोदका सुख वदा नहीं था । ईश्वर न करे कि किसी नन्हें बच्चे की माता का देहान्त हो । माताकी गोद कल्पित स्वर्ग के सुखों से भी बढ़कर है ।

इधर शिव अपनी स्वर्गवासी माता की चिता पर बैठा हुआ विलख २ कर रोरहा था, उधर नानी की आंख खुली और शिव को खाट पर न पाकर वह अपने मनमें व्याकुल हो उठी । पहले आस पास के पड़ोस में ढूंढा फिर घर से

बाहर निकल कर नदी के किनारे आई और झट शिवको चिता से उठा लिया । बच्चे की इस दशा को देखकर उसका हृदय दुख से भर गया और वह भी शिवके साथ मिलकर ढारें मारकर रोने लगी । फिर नहा धोकर दोनों घर आये ।

नानी ने शिव से कहा पुत्र आज से मैं तेरी माता हूं, तू शोच न कर मैं तुझको दूध पिलाया करूंगी । और ईश्वर की लीला देखिए कि उस वृद्ध नानी की शुष्क छातियों से उसी समय दूध निकलने लगा और उसी दूध से शिव की पालना हुई । यद्यपि नानी ने शिव को बहुत प्यार किया और अनेक प्रकार से उसको सान्त्वना दी परन्तु शिव को अपनी माता नहीं भूली । दूसरे दिन चिता की राखप्रयाग भेजी गई ताकि गङ्गा यमुना के सङ्गम में विसर्जन कीजाय । शिव को दिन दोपहर जब कभी अवसर मिलता तो वह भागकर नदी के किनारे आता और अपनी माता के चिता स्थान पर बैठकर रोता रहता था और लोग उसको ज़बर-दस्ती वहां से उठा ले आते थे ।

शिव अपनी नानी जीकी गोदमें पलकर आठ वर्ष का होगया । उधर शिव के पिताजीने दूसरा विवाह कर लिया शिव अपनी माताका अकेला पुत्र नहीं था उसके तीन भाई और भी थे । दो शिवसे बड़े थे और एक शिवसे छोटा था जिन को माता छोड़ गई थी ।

नन्सालमें शिव सर्वथा उजुड होगया था बड़ी आयु में भी वह अपनी माता को नहीं भूला । नदी का किनारा और माता का चितास्थान उसके मनमें विशेषरूप से बसे रहते थे । शिव की उदासीनता को दिन प्रतिदिन अधिक बढ़ती हुई देखकर नानी जीने विवशरूप होकर पिता जी के पास भेज दिया क्योंकि उनका विचार था कि वहां जाकर कुछ सुधर जाएगा । परन्तु पिता के घर में आकर शिवकी उदासीनता और भी अधिक बढ़ गई । उसका किसी के साथ भी स्नेह नहीं था दूसरी माता को देख कर दूर भागता था। पिताके साथ उसको प्रेम नहीं था ॥

दूसरी माता को उस पर तरस आया और उसने धीरे धीरे अपनी ओर आकृष्ट करना आरम्भ किया । प्रेम में विशेष प्रकार की शक्ति है शिव उसकी ओर आकृष्ट होने लगा । रात को उसी की गोद में सोता और दूसरी माता कहानियां उसे सुनाया करती जब शिव और दूसरी माता अकेले बैठते तो वह कहा करती " पुत्र तू जल्दी पढ़ लिख ले जब तू नौकरी करेगा तो मैं भी तेरे साथ चलूँगी शिव दूसरी माता को अम्मा कहा करता था । उसकी रोज़रोज़ की प्रेरणा ने यह प्रभाव उत्पन्न किया कि शिव ने पढ़ने की ओर ध्यान दिया । और जिन लड़कोंमें शिव का अक्षराभ्यास कराया था कुछ दिनोंके अनन्तर शिव उनका मास्टर बनने के योग्य होगया । शिव की पहिली उदासीनता, एकाग्रता

में बदल गई उसने नौ वर्ष की आयु में फारसी विद्या में पूरी निपुणता प्राप्त करली। विमाता शिवकी उन्नतिको देखकर मनही मनमें प्रसन्न होती थी। और प्रतिदिन सबके सन्मुख उसकी तीव्र बुद्धिकी सराहना करती रहती थी। शिव उरदू भाषा की कथाओंकी पुस्तकें अपनी विमाता जीको सुनाया करता था।

यद्यपि शिवमें अब विशेष प्रकारका परिवर्तन आगया था तथापि वह अब भी उजड और निराली प्रकृति का था वह केवल दोही अस्तित्वोंसे सन्सारमें प्रेम रखता था एक अपनी माता जी से दूसरी पाठ्य पुस्तकों से।

जब फारसी भाषा की पुस्तकें समाप्त हो चुकीं तो शिव तहसीली स्कूलमें पढ़ने गया जो उसके पिताके घरसे तीन मील के फासले पर था। स्कूल मास्टर एक बहुत ही दयालु और देवता स्वभाव के मनुष्य थे शिवके साथ बड़ी प्रीती से वर्तते थे। उसकी उजड्डता को क्षमा की दृष्टि से देखते रहे। यहां शिव मिडल क्लासके लिये तय्यारियां करने लगा वह रोज़ प्रभात के समय पाठशाला में आता और संध्याको घर पर जाया करता था, और उसी प्रकार अपनी माताजी की गोदमें सो रहता था। इस दूसरी माता जी से भी एक भ्राता उत्पन्न हुआ जो शिवको बाल्यकाल सेही प्यारा था।

अभी पहिली माता के विछोड़का घाव शिवके हृदयसे दूर नहीं हुआ था कि एक और दुखकी घटा उसके सिरपर आन पड़ा। एक दिन शिव अपने सहपाठियोंके साथ स्कूल मे बैठा हुआ पढ़ रहा था कि अकस्मात् दोपहर के समय घरसे मनुष्य पहुंचा और शिवसे कहने लगा कि तेरी माता बहुत बीमार है मरनेके निकट है। बचने की आशा दिखाई नहीं देती छोटे लड़केको गोदसे चिपटा रक्खा है और पिता वा चची किसीको नहीं देती यही कहती है कि शिव को बुला लावो "यह सुनते ही शिवके ऊपर मानों दुखका पहाड़ टूट पड़ा वह उसी क्षण वहांसे उठा और दौड़ता हुआ अपने घर पहुंचा। सचमुच माता मृत्युकी शय्या पर पड़ी हुई थी कण्ठ रुक गया था मुखसे फेन बह रहा था ऐसा प्रतीत होता था कि मानों मौत और जीवनके मध्यमें देरसे संग्राम होरहा है। माता देरसे मर चुकी थी केवल शिवकी आशा लग रही थी, और उसके आनेका मार्ग देख रही थी इसी कारणसे मृत्यु अब तक उस पर प्रबल नहीं आई थी। छोटा बालक गोदसे चिपटा हुआ था सब लोग मांग रहे थे परन्तु वह अपनी गोदसे पृथक करना नहीं चाहती थी और हाथ वा आंख के संकेत से मना करती थी।

शिव को देखते ही वह बहुत प्रसन्न हुई, कण्ठरुंध गया था, मुख से कुछ न बोल सकी, हाथसे बैठने का इशारा किया, और जब वह बैठ गया तो उसने छोठे बालक को

शिव की गोदमें बैठा दिया, और अपने नेत्र वन्द कर लिये जो इस संसारमें अब तक नहीं खुले ।

अन्तिम समय आचुका था उसकी जीवन यात्रा पूरी हो गई । शिव छोटे भाई को गोद में लिये हुए देर तक रोता रहा । लोगों के बहुत ढारस देने पर उसका रोना वन्द हुआ । लोक रीतिके अनुसार इस माता की अन्तेष्टि क्रिया की गई । इस प्रकार शिव दोनों माताओं से विहीन होगया । उनका ध्यान अब भी उसके हृदय से नहीं जाता । जब वह घरमें होता है तो दोनों माताओं का विशेष रूपसे स्मरण करता है । ननसाल जाने पर पहली माता के चितास्थल का दर्शन करता है ।

शिव की प्रकृति बहुत कुछ अब भी वैसी ही है, लोगों से मिलना जुलना बहुत कम रखता है, इसमें सन्देह नहीं कि उसका हृदय और मस्तिष्क बहुत उन्नत होगया है परन्तु उसने प्रारम्भ काल में जिस सांचे में अपने जीवन को ढाल लिया था वह प्रायः वैसा ही बना है । वही सादह वजा, वही प्राचीन-पवित्र विचार, वही हिन्दूपनकी निराली समझ, उसने अपनी माताओं को तो खोदिया परन्तु उस की नानीजी अब तक जीवित है, और कभी २ वह उन के दर्शन करने जाया करता है ।

जो लोग शिवकी माताओं के वृत्तान्त को पढ़ें ईश्वर करे वह अपनी माताओं का आदर सन्मान, करें और

प्रतिदिन प्रातःकाल अपनी माताओंके चर्ण छूकर काम काज आरम्भ किया करें। माता का आदर सन्मान, माता का प्रेम तथा भक्ति इस लोक परलोक दोनों में कृतकार्य्यता प्रदान करता है।

दोहा—चरण कमल वन्दन करूं, मातेश्वरी महान्।
धन्य धन्य तू धन्य है, तुझ सम और न आन॥

(श्रीदेव कविजी)

[२]

विमला की प्रतिष्ठा

प्रथम अध्याय ।

भ्रम ।

रूपसिंह जातिका चौहान था, मारवाड़ का रहने वाला था, किसी समय वह अच्छा धनी मानी राजा था किन्तु जिस समय का वृत्तान्त हम आपको सुनाने लगे हैं उन दिनों वह धन हीन था । मारवाड़ नरेश महाराजा जसमन्तसिंह को औरङ्गज़ेब ने काबुल के विजय के लिये भेज दिया और वहां ही उसे विष दिलवाकर मरवा डाला, केवल इतने ही पर उसे संतोष नहीं आया वरन् उसके पीछे उसकी विधवा महारानी राजेश्वरी के साथ भी युद्ध करता रहा, यद्यपि महारानी वीरता के साथ शाही सेना का सामना करती रही तथापि हाथी और मच्छर का सामना था, औरङ्गज़ेब ने मारवाड़ देश के एक भाग पर अपना अधिकार करही लिया । चौहान रूपसिंह उसी भाग में रहता था, यवनों ने उस की धन सम्पत्ति लूटली थी । उसने अपने नगर को त्याग दिया और मेवाड़ की सीमा पर एक ग्राम में जाकर रहने लगा । रूपसिंह के मन में आशा थी कि

ईश्वर ने चाहा तो वह फिर किसी दिन अपनी भूमि का स्वामी बनेगा।

विमला इसी रूपसिंह चौहान की होनहार कन्या थी। यह बड़ी रूपवान थी, और साहस तथा वीरता में किसी राजपूत योधा से कम नहीं थी। जब विमला युवावस्थाको पहुंची तो रूपसिंह ने एक मेवाड़ के सरदार के साथ उस का विवाह करना चाहा! उस सरदार का नाम तखतसिंह था, रूपसिंह का विचार था कि उस विवाह से उस को यवनों के परास्त करने में सहायता मिलेगी। जब यह वृत्तान्त विमला ने सुना तो उस का मन उदासीन होगया क्योंकि उसको यह वात नहीं भाई, पिता ने कन्या को उदास चित्त देखकर कहा, बेटी मैं तखतसिंह को नाता देचुका हूं वह बड़ा नेक और धर्मात्मा पुरुष है, उसके साथ नाता करने में किसी प्रकार की हानि नहीं है। विमला पिता के सन्मुख चुप रही परन्तु एकान्त में उसने अपने मन में विचारना आरम्भ किया, पिताजीकी आयु अधिक होगई है, रुपया पैसा पास नहीं है इसी लिये धनके लालच से तखतसिंह के साथ मेरा विवाह करते हैं। यहां पर हम यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि विमलाको तखतसिंह के साथ विवाह होने से घृणा क्यों थी, घृणा इसलिये थी कि उसने और लोगों के द्वारा यह सुन रक्खा था कि तखतसिंह धनीमानी तो अवश्य है किन्तु यह वृद्ध पुरुष

है, बस यही कारण था जिससे विमला इस विवाह को अप्रिय समझती थी। निदान सोचते सोचते विमला के मन में यह बात आई कि यदि कहीं से पांच हज़ार रुपया मिल जाय तो मेरे पिता जी तख़्तसिंह के साथ मेरा विवाह न करें।

यह विचार उसका सर्वथा मिथ्या था। रूपसिंह बड़ा हठीला और धर्म परायण राजपूत था, उसकी केवल इतनी ही इच्छा थी कि विमला ब्याह दी जाय और यदि उस के जीतेजी कोई सन्तान उत्पन्न हो जाय तो उसको यह प्रेरणा कर जाय कि यवनों के हाथ से उसकी भूमि का उद्धार करे। तख़्तसिंह उसके विचार में सब प्रकार से इस बात के योग्य था विमला ने अज्ञानता से कुछ का कुछ समझ लिया था। जिस दिन रूपसिंहने विमलाको उसके विवाहका समाचार सुनाया था उस दिन उसे रात्रिभर नींद नहीं आई। वह सोचती रही कि किस प्रकार पांच हज़ार रुपया हाथ आवे ताकि मैं अपने पिता को इस कार्य से वर्जित रख सकूं। सोचते २ उसको एक बात याद आई कि उसकी माता जी ने मरते समय एक जुगनू दिया था जिस में बहुमूल्य हीरे लगे हुये थे। यह जुगनू कई पीढ़ियों से रूपसिंह के कुल में चला आता था, स्त्रियां मरते समय अपने बेटे की बहू को दे दिया करती थीं और उपदेश दिया करती थीं कि यह जुगनू हमारे कुल से बाहर न जाने पावे। रूपसिंह

के कोई पुत्र नहीं था इसलिए जब उसकी स्त्री मरने लगी तो वह उस जुगनू को अपनी पुत्री को दे गई और उस से कह गई कि यदि तेरे पुत्र उत्पन्न हो, तो उस की बहू को यह जुगनू देना।

विमला ने सोचा समय टेढ़ा है इस समय और कोई भी मूल्यवान आभूषण मेरे पास नहीं है जो पांच छे हज़ार को बिक सके। चलो इसी को किसी जौहरी के हाथ बेच दें और बाप को देकर इस अनुचित कार्य से विरत रक्खे। यह इरादा करके उसने धरती को खोदकर उस जुगनू को निकाला और समीप के ग्राम के जौहरी के पास लेजाकर बेचने का इरादा किया।

दूसरा अध्याय।

जुगनू बिक गया

दूसरे दिवस प्रातः काल विमलाने मरदाने वस्त्र पहने, और कमान लेकर घोड़े पर सवार हुई। वह समय आपत्ति का था इस लिये प्रायः राजपूत स्त्रियां आवश्यकतापर भेष बदल लिया करती थीं और इस बातको कोई बुरा भी नहीं समझता था, विमला ने पिता से शिकार का बहाना करके आज्ञा प्राप्त की और कसबे की ओर चल पड़ी।

यह लड़की चौदह पन्द्रह वर्ष की आयु से अधिक की नहीं थी, उसके मुख पर शीतला के दाग़ थे किन्तु यह दाग़ ऐसे नहीं थे कि जिनसे उसकी सुन्दरतामें कुछ कमी आजाती उसका विश्वाश था कि इस भेष में उसे कोई पहिचान न सकेगा परन्तु यह संसार बड़ा विचित्र है प्रारब्ध के खेल ऐसे हुआ करते हैं मनुष्य की बुद्धि काम नहीं करती।

जब वह घरसे निकल कर जा रही थी और १ कोसके फासिले पर पहुंची तो मार्ग में उसको एक हथियार बन्द सिपाही मिला उसने पूछा "जवान ! तू कहां जाता है और कौन है? उसने उत्तर दिया "मैं रूपसिंह का नौकर हूँ और उन की कन्या की आज्ञा से एक काम के लिये गांव की ओर जा रहा हूं"। सिपाहीने पूछा "किस काम के लिए जा रहे हो क्या वह बताने योग्य नहीं"?

विमला बोली 'जब तक यह निश्चय न हो जाय कि आप कौन हैं तब तक अपना सारा भेद प्रगट करना उचित नहीं प्रतीत होता उसने कहा मैं जाति का ओसवाल जैनी हूं और जवाहिरात को लेना और बेचना मेरा काम है मुझे शिकार खेलने की टेव है इस लिए कभी २ इस भेष में निकला करता हूं। विमला उसकी वार्ता सुनकर प्रसन्न हुई और समझी कि कदाचित ईश्वर ने इसको मेरी सहायता के लिए भेजा है। उसने सब हाल उसको कह सुनाया और एक अबला कन्याकी सहायता के लिए प्रार्थनाकी उससवारने इसे

उत्तर दिया कि "जो कुछ मुझसे हो सकेगा उसके अनुसार मैं तुम्हारी सहायता करूंगा । मेरा घर समीप के कसबे में है । तू मेरे साथ चल मैं पांच हजार रुपये अभी तुझको गिन दूंगा । परन्तु इतना तू बतादे कि विमला क्यों तखतसिंह के साथ विवाह करने से घृणा करती है ?

पुरुष भेषधारि विमला ने उत्तर दिया कि "तखतसिंह बूढ़ा है वह उसके पिताके शत्रुओं से लड़ न सकेगा । सवार यह सुन कर हंसा और कहने लगा 'भाई रामसिंह ! रूपसिंह की कन्याभी विचित्र स्वभाव वाली है । उसने तखतसिंह को नहीं देखा नहीं तो ऐसा विचार न करती । अच्छा तू मेरे साथ चल मैं उस कन्या की सहायता को तुझे रुपये देदूंगा। दोनों गांव की ओर चल पड़े मार्ग में जो कोई मनुष्य मिलता वह दूसरे सवार को सम्मान के साथ नमस्कार करता सवार हाथसे नमस्कार लेने के पश्चात और बात करने से रोकदेता घर पर पहुंच कर सवार ने जुगनू लेकर पांच हज़ार रुपये विमला को गिन दिए और विमला ने रुपये अपने घोड़े पर लाद कर अपने घर का मार्ग लिया ।

तीसरा अध्याय।

पिता और पुत्री।

सन्ध्या के समय विमला रुपये लिए हुए पिता के पास पहुंची। रूपसिंह ने उस से पूछा "वेटी! यह तू क्या लाई है? विमला ने उत्तर दिया "पिता जी! मैंने समझा कि तुम रुपया न होने के कारण मुझको तखतसिंह के हाथों वेचना चाहते हो इस लिए मैं अपने आभूषण वेचकर यह रुपये लाई हूं। रूपसिंह यह सुनकर सुन्न रह गया, फिर उसने पूछा "वेटी! तुझ को कैसे निश्चय हो गया कि मैं निर्धनता के कारण तुझको वेचना चाहता हूं। यह शोक की बात है। राजपूत कभी कन्या नहीं वेचते, तूने मुझे अधर्मी समझ लिया। आज तक मेरे कुलमें कभी ऐसी वात नहीं हुई थी अच्छा तू अपनी मूर्खता पर अन्त में पछतायगी। विमला बोली "फिर आपने मेरी सम्मति के विरुद्ध तखतसिंह से विवाह करना क्यों चाहा! रूपसिंह ने उत्तर दिया कि मैंने भली भांति सोच लिया है कि तखत सिंह के साथ नाता करने में तेरा सब प्रकार का भला होगा वह धार्मिक है, शूरमा है धनी और मानी है। उसमें राजपूतों के सम्पूर्ण गुण कूट २ कर भरे हैं। महाराजा मेवाड़ उसको अपनी दहनी भुजा समझता है और उसका बड़ा आदर सम्मान करता है। वह

विशेष रूपसे महाराजा के साथ रहता है तू ने उसको नहीं देखा इस लिए ऐसी कल्पना करती है।"

विमला—मैंने सुना है कि वह वृद्ध है।

रूप सिंह—यह मिथ्या है! मैंने उनको यहां बुला रक्खा है कल वह यहां आवेंगे तू अपनी आंखों देख लेना कि मैं भूल पर हूं या तू भूल पर है। इतना कह कर रूपसिंह ने पुत्री को आज्ञा दी कि जा तू घर में भोजन करके सो रह कल देखा जायगा।

विमला सिर नीचे किये हुये घर के भीतर चली गई और भोजन के पश्चात् सो रही।

चौथा अध्याय।

अद्भुत स्वप्न।

विमला दिन भर की थकी मांदी थी इस लिए शीघ्र सोरही। निद्रा दशामें उसने एक ऐसा स्वप्न देखा। उस को स्वप्न में अपनी माता के दर्शन प्राप्त हुए, परन्तु वह क्रोध की दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी। विमला माता को क्रोध की अवस्था में देखकर डरी और हाथ जोड़कर कहने लगी "माता मैंने क्या अपराध किया है जो तू इस प्रकार मुझपर क्रोधित हो रही है?"

माता–बेटी ! तूने बड़ा अपराध किया है अपने कुल की मर्य्यादा का कुछ भी ध्यान नहीं रक्खा।

विमला—हे माता ! मैंने अपने कुल को कलंकित नहीं किया मेरे प्राण निकल जायें परन्तु मैं स्त्री धर्म से पतित न होंगी तेरा क्रोध व्यर्थ है किसी ने तुझ को व्यर्थ सूचना दी है।

माता-तू कलंकिनी है तू निर्लज्ज है, तू धरोहर की रक्षा नहीं करसकी । मैंने तुझको एक जुगनू दिया था और कह दिया था कि इसको कभी न खोना पर तूने मेरा वचन याद नहीं रक्खा । क्या स्त्रियां इसी प्रकार धर्म्म की रक्षा करती हैं ?

विमला–माता क्षमा कर आपदा के समय मैंने ऐसा किया है।

माता–नहीं वह अपराध क्षमा करने के योग्य नहीं है। तूने क्यों ऐसा किया।

विमला–पिता जी तखतसिंह के साथ मेरा विवाह करने वाले थे । उनको रुपयों की आवश्यकता थी, वह धन के लोभ से मुझे उनको सौंप रहे थे । मुझसे और कुछ न बन पड़ा विवश होकर मैंने इस जुगनू को बेच डाला।

माता–तूने अत्यन्त अनुचित किया, तू व्यर्थ अपने पितापर अपवाद लगाती है । उनको रुपयों की आवश्यकता

नहीं है । क्षत्री कभी धन का मुहताज नहीं होता रुपया हाथ का मैल है नित्य आता और जाता है क्षत्री धर्म्म को नहीं छोड़ता, वह समझ बूझ कर काम करता है । तेरा पिता अपने धर्म पर है । उसने दुःख सहे पर यवनों की दासता नहीं स्वीकार की । बेटी तूने अच्छा नहीं किया । कठिन भूल की अब कोई माता कैसे अपनी पुत्री का विश्वास करेगी ? यही कारण है कि पुत्री का बहू की तुलना में कम विश्वास किया जाता है । हां, यदि मेरे एक लूला लंगड़ा पुत्र उत्पन्न हुआ होता तो मैं अपनी सास की दी हुई धरोहर तुझे कभी न सौंपती ईश्वर जो चाहे सो करे ।

विमला–माता जी ! सचमुच मुझसे अपराध हुआ है अब क्या करूं मैं तुझसे प्रार्थना करती हूँ कि तू क्षमा करदे अब ऐसा अपराध कभी न करूंगी ।

माता–अच्छा ले यह जुगनू नये सिरे से फिर तुझे सौंपती हूं अब इसे अपने पास से कभी पृथक न करना, और जब तेरे पुत्र का विवाह हो तो उसकी बहू को मेरी ओर से दे देना ।

विमला ने जुगनू हाथ में लेलिया और सचमुच वह वही जुगनू था जिस को वह एक अजनबी पुरुष के हाथ बेच आईथी । जिस से वह उसकी ओर विचार पूर्वक देखने लगी उसी समय घर की स्त्रियों के वार्तालाप के शब्द से

उसकी निद्रा भंग होगई आंख खोलकर देखा तो न जुगनू था और न माता थी।

पांचवां अध्याय।

तखतसिंह का मिलाप।

रात के स्वप्न ने विमला के हृदय को चिन्तावान बना दिया, वह अपनी भूल पर बारंबार पछताती रही। निदान फिर उसने मरदाने वस्त्र पहन कर बाहर जाने का इरादा किया ताकि जुगनू को लौटा लावे। और जब हथियार बांधकर पिता से बाहर जाने की आज्ञा मांगी तो उसने उस को जाने से मना किया और कहा "बेटी! अब तू नियम के प्रतिकूल चलने लगी है। जो सन्तान माता पिता की आज्ञा नहीं मानती वह दुःख और क्लेश पाती है। लड़कियां आज्ञाकारी मानी जाती हैं परन्तु दो चार दिन से तू इसके विपरीत चल रही है। आज मेरे घर में पाहुन आने वाले हैं तू घर से बाहर पांव न धर नहीं तो मैं बहुत अप्रसन्न हूँगा।

विमला का हृदय बहुत उत्तम था वह लज्जा से गर्दन नीचे किए हुए भीतर चली गई और मरदाने वस्त्र उतार कर अपने असली वस्त्र पहन लिए और जुगनू की चिन्ता में लगी रही।

सन्ध्या के समय उसके यहां पाहुन आए, रूपसिंह ने उनका बड़ा आदर और सन्मान किया, सब लोग पाहुनों के आने से प्रसन्न थे, केवल विमला का हृदय उदास था।

जब खाने पीने से रूपसिंह और तखतसिंह निश्चिन्त हुए तो वह एकान्त स्थान में बैठकर बात चीत करने लगे। विमला व्याकुलता की दशा में पिता के पास चली आई। उसकी आंखोंसे आंसू बह रहेथे उसने अपने पिता से रोकर कहा पिता जी मैं बड़ी अपराधिनी और कलंकिनी हूं आप मुझको अपनी लड़की न समझें और न मेरा विवाह किसी धर्मात्मा पुरुष के साथ करें।

रूपसिंह और तखतसिंह दोनों के दोनों विमला के वचन सुनकर सुन्न रहगये। ईश्वर यह क्या बात है? कन्या का अकस्मात एक पाहुन के सामने आजाना अनुचित था परन्तु रूपसिंह ने अपने हृदय के आवेश को थाम लिया। और कहने लगे बेटी कुशल तो है तू इतनी व्याकुल क्यों है। तूने क्या अपराध किया है? साफ साफ और सच सच मुझ से कहदे। मैं तुझ को क्षमा कर दूंगा।

अब तो रूपसिंह बहुत घबराया और तखतसिंह की निगाह भी बदल गई। परन्तु रूपसिंह अपनी पुत्री को जानता था इसलिए कहने लगा कुछ परवा नहीं तू साफ २ अपना हाल बतादे मैं तुझको क्षमा कर दूंगा।

विमला ढाढ़ें मार कर रोने लगी और बोली पिता जी ! मेरी माता जीने मरते समय मुझ को एक जुगनू दिया था और यह कहगई थीं कि इसको अपने बेटे की बहूको देना। परन्तु मुझ मूर्खा ने यह समझकर कि आप निर्धनता के कारण किसी वृद्ध के साथ मेरा विवाह कर रहे हैं उसको एक जौहरी के हाथ पांच हजार रुपये को बेच डाला । रात को माता जीने मुझे स्वप्न दिया और बहुत लानत मलानत की । मुझको अपनी भूल के लिये महा पश्चाताप हो रहा है। आप मेरा विवाह न करें अब मैं विष खाकर अपने प्राण त्याग करूंगी । इसके सिवाय इस अपराध का और कोई प्राश्चित नहीं है।

रूपसिंह तो कुछ देर तक चुप रहा परंतु उसका पाहुना उठ खड़ा हुआ और हाथ में एक जुगनू लेकर विमला को दिखाया। सुन्दरी ! देख तो सही यह वही जुगनू तो नहीं है जो तूने कल बेचा था।

विमला ने कहा हां यह वही जुगनू है परन्तु आप को कैसे मिला ?

तख़्तसिंह "सुन्दरी ! अच्छी तरह देख मेरी और उस जौहरी की सूरत मिलती है या नहीं ? मैंने ही जौहरी बन कर तुझसे जुगनू खरीदा था । अब तुझको फिर वापिस देता हूँ जिसने तुझसे यह कहा था कि तख़्तसिंह बूढ़ा है उसने मिथ्या कहा था मेरी आयु अभी बीसवर्ष से अधिक नहीं है तू स्वयम देखले।

विमला ने एक दृष्टि उठाकर उसकी ओर देखा । दीपक के प्रकाश में उसका रूप दमक रहा था वह बड़ा सुन्दर मनुष्य था और क्षात्रियपन की बांकी अदा उस की वज़ा कता से प्रकट हो रही थी । विमला लज्जित होकर वहां से घर के भीतर चली गई और दूसरे दिन तखतसिंह के साथ उसका विवाह रचा गया । तखतसिंह बड़ा शूरमा क्षत्री था एक वर्ष के भीतर भीतर उसने यवनों से रूपसिंह की कुल जागीर छीनली और रूपसिंह के हवाले करदी । विमला प्रत्येक संग्राम में उसके साथ रही और जहां आवश्यकता पड़ी उसने भी अपनी राजपूती वीरता का परिचय दिया ।

३-मैनावती।

रा जा गोपीचन्द की माताका नाम मैनावती था। यह स्त्री परले दर्जे की धार्मिका, पवित्र-मना उन्नतचेता और ईश्वरकी भक्तिनी थी! जिस समय गोपीचन्दने गुरु मतेन्द्रनाथजी की शिक्षा से राज्य कार्य्य को छोड़ कर साधू भेष धारण करके संन्यासाश्रम को ग्रहण किया तो राज महल में केवल मैनावती ही थी जिस ने हर्ष का प्रकाश किया था और बाकी सब स्त्री पुरुष दुखी थे महल में शोक छा गया था और वह शोकस्थान बन गया।

गुरुकी आज्ञा पाकर महाराजा गोपीचन्दजी साधुभेष धारण किये हुए अपने महल की रानियों से भिक्षा मांगने आए तो उनको देख कर रानियोंने महारोदन और विलाप किया। गोपीचन्दजी की बहिन ने यह समाचार सुना तो वह उनके पास दौड़ी आई और जिस समय उसने उनको साधु भेषमें देखा तो उसकी आंखोंसे आँसुओं की धारा बह निकली। उसने रोते हुये कहा भाई गोपीचन्द ! तुम ने यह क्या किया ? गोपीचन्द अब केवल उसके भाई नहीं वरन् सम्पूर्ण संसारके भाई होगये थे उन्होंने ममता को त्याग कर उसके उत्तरमें कहा "अलख" और यह बेचारी ममता की मारी चिल्ला २ कर रोनेलगी और मूर्छित होगई

गोपीचन्द ने वहाँ से चल कर अपनी माता मैनावती के महलमें अलख जगाया, वह आनन्द पूर्वक भिक्षा लेकर बाहर निकली और गोपीचन्दको सिर से पांव तक देखकर कहने लगी "धन्य है मेरी कोख जिसमें तेरा जैसा भक्त रूपी रत्न उत्पन्न हुआ । मैं स्त्रियों में सौभाग्यवती समझी जाऊंगी क्योंकि जिस स्त्री के पेट से भक्त होते हैं वह बड़ी भाग्यवान होती है । पुत्र ! जा जिस बाना को धारण किया है उसमें पूरा उतरना । अब ईश्वर, तेरी माता की आसीश तेरी सहायता करे। हे प्यारे पुत्र ! मैं तुझको तीन शिक्षायें प्रदान करतीहूं उनको सदैव स्मरणरखना । गृहस्थी मनुष्य का अधिकार नहीं है कि साधू को उपदेश दे परन्तु मैं तेरी माता की स्थिति में तुझको उपदेश देती हूँ। इस को भूल न जाना ईश्वर तेरा कल्याण करेगा" । गोपीचन्द जी को आश्चर्य्य हुआ उन्होंने हाथ बाँध कर कहा माता जी आप की क्या आज्ञा है ? मैनावती ने गम्भीरता के साथ उत्तर दिया "मेरे लाल ! तू साधारण साधु नहीं तू राजभक्त राजऋषि और राजमुनि है इसलिये तुझको और भी आवश्यक है कि अपनी माताके वचन सर्वदा याद रक्खे। पहला उपदेश मेरा यह है कि तू जब रहना किले में रहना ताकि शत्रुओं के आक्रमण से सुरक्षित रहे । दूसरा उपदेश मेरा यह है कि तू जब सोना तो अच्छे से अच्छे और नरम सुख देने वाले तोषक पर सोना । तीसरा उपदेश यह है

कि जब भोजन करना तो अच्छे से अच्छा भोजन करना जो राजाओं को भी प्राप्त नहीं होता।

गोपीचन्दजी ने मुस्कराकर उत्तर दिया। माताजी ! साधू और अच्छे से अच्छा भोजन करना। साधू और किले में रहना ! साधू और नरम से नरम तोशक पर सोना यह कैसे सम्भव हो सक्ता है ? हे माता ! साधु का जीवन जीते जी की मौत है। इस राहमें तीखे कांटे हैं जो पांव को सदैव घायल करते रहते हैं। साधु को सुख का ध्यान नहीं होता।

दोहा—प्रेम मार्ग अति कठिन है, विरला चालै कोय।
पग २ औखी घाटिया, छिन छिन मरना होय॥
मन मारे तन वश करे, अर्पे सकल शरीर।
इस प्रकार से पहुंचाई, भक्तेश्वर के तीर॥

(श्री देव कवि जी)

परन्तु हे माता ! मुझे यह भी निश्चय है कि तू कभी मिथ्या और अनुचित भाषण करने वाली नहीं है। हे माता तू अपने उपदेश को किंचित व्याख्या के साथ कह मैं उस को सदैव स्मरण रक्खूंगा। तेरा किले में रहने, नरम तोशक पर सोने और उत्तम भोजन खाने से असल अभिप्राय क्या है ?

मैनावती ने प्रेम भरी चितवन से साधू को देखा क्यों कि उस में माता के वचनों का विश्वास कूट २ कर भरा

हुआ था। उसका जी उमंगा कि अपने प्यारे बेटे को हृदय से लगा ले, परन्तु उसने अपने आपको सम्भाला। गोपीचन्द अब उस का पुत्र नहीं रहा था संसारी रिश्ते नातों से वह विरक्त हो चुका था। माता के नेत्रों में आंसू भर आए। धार्म्मिका रानी ने आंचल से अपने आंसू पोंछे और जिन ज़ोरदार शब्दों में अपने पुत्र को उपदेश दिया वह सब छोटे बड़े के स्मरण रखने के योग्य हैं।

उसने कहा पुत्र! किले में रहने से मेरा यह अभिप्राय है कि तू सदा धर्मात्माओं की संगत में रहे क्योंकि जो धर्मात्माओं की संगत में रहते हैं उन पर बुरे विचार आक्रमण नहीं करते। महात्माओं के वचन उसकी नसों और नाड़ियों में प्रविष्ट होकर सन्नाह और झिलम बन जाते हैं। और भीतर तथा बाहर दोनों प्रकार के शत्रुओं से रक्षा करते हैं। काम क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार यह मनुष्य के अन्तरिक्ष शत्रु होते हैं, जो मन में उत्पन्न होते हैं। ऐसे ही बाह्यक जगत में बाहर के शत्रु होते हैं यह दोनों ही अत्यन्त हानिकारक हैं। इन से बचने के लिए सिवाय महात्माओं के सत्संग के और कोई उपाय नहीं है। तू अभी नवयुवक है, अध्यात्मिक अल्पायु है, जगत् के नियमों से अवगत नहीं है। एकान्त में रहने वाले साधु अपने मन की तरङ्गों में प्रायः ऐसा डूबते हैं कि उन का पता नहीं लगता इस लिए जब तक पूरा २ मन पर अधि-

कार न होजाय तव तक एकान्त स्थान में निवास करना लाभ के स्थान में हानि पहुंचाता है । साधु महात्माओं का वचन इस से वचने का उत्तम उपाय है । और मेरी सम्मति में वह दृढ़ किला है । जिसके निवासी को शत्रुओं के आक्रमण का कोई भय नहीं है ।

दोहा—मन समुद्र लखिना पड़े , उठे लहर अपार ।
दिल दरिया समुद्र रथ विना, कौन लगावे पार ॥
दर्शन कीजै साधु का, दिन में कई यक वार ।
आसौजा का मेह ज्यों, वहुत करे उपकार ॥
साधु नदी जल प्रेम रस, तहं परछांवां अंग ।
कहैं कवीर निर्भय भया, साधु जनों के संग ॥
कवीर दर्शन साधु का, साहब आवें याद ।
लेखे में सोई घड़ी वाकी दिन के वाद ॥
साधु हमारी आत्मा, हम साधन के जीव ।
साधन में हम यों रमैं, ज्यों वय मध्ये धीव ।

इतना कह कर रानी चुप हो गई । कृतज्ञ साधू ने उस के चरणों की ओर हाथ वढ़ाया, उसने साधू को रोक कर कहा महात्मा ! तुम साधू हो मैं गृहस्थी हूं ।

नवयुवक साधू ने फिर पूछा माता ! अच्छे से अच्छा भोजन करने से तेरा क्या अभिप्राय है ?

रानी ने उत्तर दिया "पुत्र ! अच्छे भोजन से मेरा यह तात्पर्य्य है कि जव तक खूव भूख न लगे तव तक कदापि

भोजन न करना, जब प्रबल भूख लगे उस समय आहार करना भूख के समय सूखी रोटी मोहनभोग से अधिक स्वाद दायक प्रतीत होती है । लोग कहते हैं कि साधु को जिस समय आहार मिल जाय उसी समय खाले, क्योंकि उसका कहीं घर वार नहीं होता, परन्तु यह वात वह लोग कहते हैं जो असलियत को नहा जानते और जिन्होंने ईश्वर की अपार शक्ति पर विचार नहीं किया।

दोहा—रचनहार को चीन्हले, खाने को क्या रोय।

मन अन्दर मैदान में, तानि विछौरा सोय ॥

जो पुत्र के उत्पन्न होने स पहले माता की छाती में दूध उतरता है, जो अबोधता की दशा में अल्पायु बच्चों की सेवा का काम माता पिता को सौंपता है। हे पुत्र ! वह सच्चा स्वामी कभी अपने किसी पुत्र से ग़ाफिल नहीं रहता । आहार मिलेगा पर मिलेगा । आहार पहुंचाने का फ़िकर उस को है जिसने उत्पन्न किया है । साधू को सदा ईश्वर फरायण रहना चाहिये उसके रोम २ में परमात्मा का अटल विश्वास रहना चाहिए। माली को स्वयम पौदों को सींचने का खयाल रहता है । पौदे क्यों चिन्ता करें जब वह मालिक स्वयम चिन्ता करता है । हमारी चिन्ता हानिकारक होगी । पुत्र ! उसी का आशरा रख, उसी का भरोसा रख, उसी पर दृढ़ होजा जिसने इस ब्रह्माण्ड की फुलवारी लगाई है वह आवश्यकता के समय

स्वयम फूलों को सींचा करता है । तू भूल कर भी पेट की फ़िकर न करना और न भूख से पहले कभी रोटी खाना। हे राजऋषि ! इसके सिवाय तुझ को शरीर का साधन भी करना है । बिना आवश्यकता के यदि तू शरीर की ओर सदा दृष्टि रक्खेगा तो शरीर तुझको पतित कर देगा। कभी उसको अनावश्यक वस्तु न दे । अधिकार और पात्र का सदा ध्यान रख जब यह रोटी मांगने लगे और तू देखे कि अब रोटी दिए बिना भजन में भंग होगा तो इस को सूखी रूखी रोटी जो कुछ मिले दे दे यह उसको महा प्रसाद समझेगा और तेरा दास रहेगा । इस क्रिया के करने से वह कभी तुझ पर प्रबल न आवेगा । जो मालिक बिना समझे बूझे अपने दास की आज्ञा पालन करता है वह अपने पद से गिर कर दास बन जाता है और उसके हाथों से मारा जाता है । इस बात को अच्छी तरह मन में धारण करले । बिना खूब भूख लगे हुए भोजन न करना अन्यथा वह हानि पहुंचावेगा भजन में विघ्न पड़ेगा । भूख के समय जो तू खालेगा वह न केवल स्वादिष्ट ही प्रतीत होगा वरन् शरीर उसको आनन्द पूर्वक ग्रहण भी करेगा और तेरे आधीन रहेगा ।

इतना कह कर रानी चुप होगई । गोपीचन्द जी ने कृत्य २ होकर कहा "माता ! तू धन्य है । धन्य भाग्य है वह प्राणी जिनकी माताएँ ऐसी विचारशील हैं । अब तू

इस भेद को भी प्रगट करदे कि मुलायम तोशक पर सोने से तेरा क्या अभिप्राय है?

रानी बोली "हे पुत्र जब तक अच्छी तरह नींद न सतावे तू कभी सोने की इच्छा न करना। निद्रावस्थाको निमन्त्रण देकर बुलाने का यत्न न करना। तेरा हृदय दिन रात भजन व साधन में प्रवृत्त रहे! एक २ श्वांस तेरे जीवन का मूल्यवान है सो व्यर्थ नष्ट न होने पाय।

दोहा—श्वांस २ पर राम कह, वृथा जन्म मत खोय।
को जाने यहि श्वांस को, आवन होय न होय॥
जाकी पूंजी श्वांस है, छिन आवे छिन जाय।
ताको ऐसा चाहिए, रहै नाम लौ लाय॥

कहता हूं कहि जात हूं कहां बजाऊं ढोल।
श्वांसा खाली जात है, तीन लोक का मोल॥

ऐसे मंहगे मोल का, एक श्वासां जो जाय।
चौदह लोक पट तर नहीं, क्यों तू धूरि मिलाय॥

नींद निशानी नीच की, उठ्ठ कबीरा जाग।
और रसायन छांड़ कर, तू नाम रसायन लाग।

कबीर चिन्ता तो सत नामकी, और न चितवेदास।
जो कुछ चितवे नाम बिन, सोई कालकी फांस॥

कबीर सोता क्या करे, जागन की कर चौंप।
यह दम हीरा लाल है, गिन २ गुरु को सौंप॥

सोता साधु जगाइये, करे नाम का जाप ।

यह तीनों सोते भले, साकित सिंह और सांप ॥

कबीर सोता क्या करे, सोये हेत अकाज ।

ब्रह्मा का आसन डिगा, सुनी काल की गाज ॥

हे बेटे ! जो कुछ तुझको समय मिले सब मालिक की याद में खर्च कर । हर समय उसी के नाम का चर्चा करता रह, और जब नींद बहुत सतावे तो कांटेदार झाड़ियों में पड़ कर ईंट व पत्थर का सिरहाना रख कर सोजाया करना यह तेरे लिए नरम बिछौने और तोशक का काम देगा । तू सदा सुखी रहेगा, हे राजभिक्षु ! जो यूं ही बिना गहरी निद्रा के सोते हैं वह आलसी होते हैं, भयानक स्वप्न देखते हैं । और शरीर उन पर प्रबल आजाता है । फिर भजन और साधन कुछ बन नहीं पड़ता और वह पतित हो जाते हैं । इस शरीर को आलसी मत बनने दे । इसको बेकार मत रख बेकार के मन में ईश्वर नहीं बसता वरन् पाप बसता है । साधु का जीवन संग्राम का जीवन है इसने औरों के उपकार के लिए यह भेष धारण किया है कितने शोक और लज्जा की बात होगी यदि वह प्रमाद और आलस्य के हाथों अपने आपको बेचदे । जब तक शरीर काम कर सक्ता है तब तक मन, वचन, कर्म से तू औरों को लाभ पहुंचाने का यत्न कर । और जब देखे कि मन और इन्द्रियां काम नहीं करतीं तब किसी स्थान में पड़

कर सो रह। क्या तू नहीं देखता जब तक ज़रा भी ब्रह्माण्ड में काम करने की शक्ति रहती है तब तक सृष्टि में कर्म्म हुआ करता है । जब शक्ति थक जाती है तब सृष्टि प्रलयमें जाकर सो जाती है। और परमात्मा में लय होकर उस से ताज़ा शक्ति पाकर फिर कर्म्म करने लगती है तू भी हमेशा जागने का कर्म्म कर । और जब यह शरीर सर्वथा थक जाय तो सो जाया कर और ताज़ादम होकर संसार के उपकार के निमित्य उठ खड़ा हो औरों को धर्म्म और कर्म्म का मार्ग दिखलाने का प्रबन्ध कर यह साधुओं के लक्षण हैं। तू आज से अपने लिए अपना जीवन मत व्यतीत कर, तेरा सब काम औरों के लिए हो। तू जाग औरों के लिए कर्म्म कर औरों के लिए, तेरा चलना फिरना, उठना, बैठना, बोलना, चुप होना सब औरों के लिये हो, कोई काम अपने लिये न हो । यदि तू मेरी इस बात को गाठ बाँध लेगा और इसी के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करेगा तो जहां जायगा वहीं शुभ और कल्याण फैला सकेगा तू सच्चा साधु बनेगा, औरों के दुःख हरेगा, सबको सुख देगा, सब लोग तुझको अपने नेत्रों पर बैठायेंगे और कहा करेंगेः—

दोहा—सुख देवें दुख को हरें, दूरि करें अपराध।
कहें कबीर वे कब मिलें, परम सनेही साध॥

हे पुत्र ! आज तू भिक्षुक बनकर अपनी माता के द्वार पर भिक्षा मांगने आया है इस लिए माता तुझको यह दान देती है। यह तीन वचन तीन पदार्थ हैं जो तेरे कमण्डल में मैनावती प्रेम और भक्तिभाव से डालती है। जा पुत्र ! इन पर गुज़ारा कर, इनको पचाले ताकि तुझको पुष्टि मिले तू न केवल अपना उद्धार कर सके वरन तेरे द्वारा संपूर्णजगत् का उद्धार हो। तू झूठी माया मोह को छोड़दे । गुरू मत्स्येन्द्र नाथ तेरा कल्याण करें।

इसके पश्चात् मैनावती फिर न बोल सकी उसकी जिह्वा बन्द होगई । और वह रोती हुई घरके भीतर चली गई। और गोपीचन्द जी भी प्रेम के आंसू बहाते हुये अपने गुरू के मठ की ओर पधारे।

पाठक गण ! आर्य्य जाति में इस प्रकार की योग्य मातायें और योग्य पुत्र हुआ करते थे, यह आदर्शपुत्र और आदर्श मातायें थी। उनका जीवन उनके वचन, उनके कर्तव्य सब आदर्श हुआ करते थे परन्तु क्या अबभी वही अवस्था है? नहीं।

चौपाई ॥

अब नहिं वह दिन नहिं वह रातें, केवल सुमिरनको रही बातें।

श्रीदेवकविजी

४–अलूपी व चित्राङ्गदा।

पाण्डवों सेना का प्रसिद्ध सेनापति वीर अर्जुन युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा लेकर निकला और जिस किसी राजा महाराजा ने उस घोड़े को रोका उसके साथ अर्जुन ने युद्ध करके उसे परास्त किया। इस प्रकार अनेक बड़े २ राजाओं और महाराजाओं को पराजित करके युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलत होने के लिये भेज दिया।

जब वह मनीपुर आसाम में पहुंचा तो वहां का राजा वभ्रू वाहन उस से मिलने के लिये आया, यह अर्जुन का पुत्र था। वनोवास के दिनों में अर्जुन ने मनीपुर के नागराजकी कन्या के साथ विवाह कर लिया था, नागराज के कोई पुत्र नहीं था इस लिए उसने अर्जुन से यह वचन ले लिया था कि उसकी पुत्री मनीपुर में ही रहेगी और यदि उसके गर्भ से कोई पुत्र उत्पन्न हुआ तो वह मनीपुर का स्वामी होगा। अलोपी के विवाह के पश्चात् मनीपुर में अर्जुन का विवाह एक और राजकुमारी के साथ हुआ जिसका नाम चित्राङ्गदा था। दोनों रानियां एक साथ एक ही महल में रहती थीं, परस्पर वड़ी प्रीति थी वभ्रू वाहन इसी चित्रांगदा के पेट से उत्पन्न हुआ था।

जब बभ्रू वाहन ने सुना कि मेरा पिता अर्जुन मनीपुर में आया है तो उस के हर्ष की कोई सीमा न रही वह बहुत से हीरे मोती भेंट आदि साथ लेकर अर्जुन से मिलने गया। उसने अर्जुन को पहले कभी नहीं देखा था, केवल उसकी वीरता की प्रशंसा सुनी थी । जब अलोपी उस को अर्जुन की वीरता का वृत्तान्त सुनाती तो उस का हृदय ललक उठता था, और वह कहा करता था वह कैसा उत्तम दिन होगा जब मैं अपने पिता का दर्शन कर सकूंगा।

संयोग से वह दिन भी आ पहुंचा । अर्जुन मनीपुर में आगया, नवयुवक राजा जो लाखों मनुष्यों पर राज करता था स्वयम पिता से मिलने गया । वह जानता था कि मेरा पिता मुझको देख कर प्रसन्न होगा। परन्तु ऐसा नहीं हुआ ज्यूं ही बभ्रूवाहन ने अर्जुन के पास पहुंच कर नम्रता के साथ प्रणाम किया त्योंही अर्जुन के नेत्र क्रोध से लालवर्ण अंगारा के समान होगये । उसने गर्जकर कहा "कायर लड़के! यह धर्म क्षत्रियों का नहीं है । तेरी क्रिया सर्वथा अनुचित है । तू क्षत्रिय धर्म्म से गिर गया, मैं इस अवसर पर तेरे पास पिता की स्थिति में नहीं आया वरन् महाराजा युधिष्ठिर का सेनापति बन कर आया हूं । मैं तेरे राज्य में शत्रु की तरह प्रविष्ट हुआ हूं तुझ को उचित था कि तू मेरे साथ युद्ध करता, तेरी बुद्धि को धिक्कार है क्योंकि तू क्षत्रिय धर्म्म से गिर गया है । मैं लड़ने के लिये

आया हूं और तू कायरों की तरह नम्रतापूर्वक मिलनेआया है। यह क्षेत्री को उचित नहीं है । यदि तेरे हाथ में धनुष वाण न होता, यदि मेरी कमर में शत्रुनाशिनी खड्ग न बंधी होती, यदि मेरे शरीर पर सन्नाह संजोवा न होता तो मैं तेरे इस व्यवहार का उचित समझता, परन्तु तू जानता है कि मेरा इरादा क्या है और मैं किस अभिप्राय से वाहर निकला हूं । और फिर भी तुझको क्षत्रिय धर्म्म का ध्यान नहीं हुआ तू महापापी और निकृष्ट है"।

वभ्रूवाहन क्या आशा लेकर आया था और क्या होगया पिता पुत्र को ऐसे कठोर शब्द कहे । वभ्रूवाहन के हृदयको महा आघात पहुंचा । वह भूमि की ओर सिर झुकाये हुये सोचने लगा।

अभी वह इसी सोच में पड़ा था कि पिता के अनुचित व्यवहार के विषय में क्या करे कि इतने में लोगों ने अर्जुन के वाक्य यथा तथा अलोपी को जा सुनाये । क्षत्रानी अपने धर्म्म को जानती थी, वह आग बगोला होगई उस को इतनी ताव कहां थी कि अपने पुत्र के अपमान को सह सक्ती, वह स्वयम उस स्थानपर जा पहुंची जहां वभ्रूवाहन उदासचित खड़ा था और सोच रहा था कि पिता के इस बर्ताव का क्या वदला दूं।

अलोपी वड़ी रूपवान थी वह इस समय अपने पुत्र के अपमान को सुन कर तेहे में आई हुई थी इस लिये

उसका रूप और भी दमक उठा था, ऐसा प्रतीत होता था कि कोई रूप की देवी दो योद्धाओं का युद्ध देखने आई है।

अलोपी ने बभ्रूबाहन के पास पहुंचतेही उससे कहा बेटे! तू खड़ा हुआ सोच क्या रहा है? मैं आज्ञा देती हूं कि तू अर्जुन के साथ युद्ध कर। अर्जुन ने तुझको बुरी तरह ललकारा है मैं इसको कैसे सहन करसक्ती हूं कि मेरे पुत्र का इस प्रकार अपमान हो। क्षत्री इस प्रकार ललकारे जाने पर मृत्यु का सामना करने को भी तय्यार होजाता है। तू ताल ठोंक कर अर्जुन का सामना कर और उस को दिखादे कि अलोपी का दूध ललकारे जाने पर किस प्रकार आवेश में आता है। अर्जुन बलवान है शूरवीरों में अद्वितीय है उसके बाणों को देख सिंह भी डर जाते हैं परन्तु जब तक तू अपनी वीरता का प्रमाण न दिखा देगा तब तक वह तुझसे कदापि प्रसन्न न होगा। तू पिता से लड़, मैं तुझको आज्ञा देती हूं।

बभ्रूबाहन आवेश में आगया उस की आंखों में खून उतर आया और उसने झटपट सन्नाह संजोवा पहन कर धनुषबाण धारण कर लिया। बभ्रूबाहन को लड़ाई के लिए तैयार पाकर अर्जुन का हृदय उछल पड़ा क्यों नहीं निदान यह भी अभिमन्यु का भाई है। दोनों शूरमा आमने सामने हुए और सर्प के समान लपलपाते हुये तीर एक दूसरे पर चलानेलगे। इससे पहले पिता पुत्रका युद्ध किसीने नहीं देखा

था, दोनों योधा थे दोनों क्रोध से एक दूसरे के सामने इस प्रकार आकर डट गये मानों देवता और राक्षस अपने २ प्राणों के लिये लड़ रहे हैं। लड़का रूपवान था अभी दाढ़ी और मूछ भी नहीं आई थी। दोनों की कमानों से सनसनाते हुए तीर निकलने लगे। देखने वालों को आश्चर्य्य हुआ।

बभ्रू वाहन ने अर्जुन के तीव्र बाणों से क्रोधित होकर एक ऐसा बाण मारा कि वह अर्जुन के कन्धे में जाकर समा गया और अर्जुन उसकी चोट से व्याकुल होगया और थोड़ी देर विश्राम लेने के पश्चात् फिर उस के सामने आया और कहने लगा वाह ! वीर तू सचमुच अपने पिता का पुत्र है । मैं तेरी वीरता से बड़ा प्रसन्न हुआ परन्तु तू सावधान होजा अब मैं अपना बाण चलाता हूं।

यह कह कर अर्जुन ने बाणों की वर्षा आरम्भ की और उसके गाण्डीव धनुष से इतने शीघ्र बाण निकलने आरम्भ हुये जैसे आकाश से मूसलाधार जल बरसता है । परन्तु बभ्रू वाहन ने ऐसी फुर्ती से उत्तर देना आरम्भ किया कि अर्जुन के सम्पूर्ण बाण कट कर बीच ही में गिर गए और किसी के दो टुकड़े और किसी के तीन टुकड़े होगये । तीन बाण अर्जुन के झण्डे में लगे और वह कट कर भूमि पर आ गिरा, यह देख कर अर्जुन विस्मत हुआ उसने पांच बाण से बभ्रूबाहन के रथ के घोड़े मार डाले और एक २ बाण से रथ का झण्डा गिरा

दिया, जिससे राजा वभ्रूवाहन रथ विहीन होगया और वह पैदल ही अर्जुन के साथ युद्ध करने लगा । पहिले तो वह संभल कर ऐसा तीर चलाता था कि जिस से अर्जुन को कठिन घाव न लगे परन्तु अब क्रोध की दशा में यह ध्यान जाता रहा उस ने आवेश की दशा में एक ऐसा बाण मारा कि वह अर्जुन की सन्नाह को चीरता हुआ हृदय में जा घुसा और महा भारतका बांका शूर भूमि पर गिर पड़ा जब वभ्रू वाहन ने यह दशा देखी तो वह घबड़ा गया और वह भी मूर्छित हो कर भूमि पर गिर गया किन्तु उसकी मूर्छा और प्रकार की थी ।

जब यह खबर चित्राङ्गदा को मिली कि उसका प्यारा पति रण भूमि में जूझ गया है तो वह रोती हुई मैदान में आई वहां देखा कि पति और पुत्र दोनों भूमि में पड़े हैं उसने अपना सिर पीट लिया आंख से आंसू वह चले सिर के बाल खुले हुए थे और वह अलोपी को सम्बोधन करके कहने लगी हे अलोपी । तूने यह क्या किया तेरे कारण से आज मेरे पति और पुत्र का यह हाल है । क्या तू स्त्री धर्म्म को जानती है, हाय ! तू तो सच्ची स्त्री की तरह अर्जुन पर प्राण निछावर करती थी आज क्या होगया कि उस से इतनी क्रोधित होगई और पिता के सन्मुख पुत्र को खड़ा कर दिया । हे देवी ! सारी दुनियां में तेरी नेकी की प्रसंशा है । मुझ को अपने पुत्र के मरने का इतना शोक

नहीं है जितना कि पति के मरने का है । चित्राङ्गदा इतनी बात कह उस जगह गई जहां अर्जुन खून से लतपत हुआ भूमि में पड़ा था, नाड़ियां वन्द हो चुकी थीं चेहरा सूख गया था उसने पति के सिरको गोद में उठा लिया और इस प्रकार विलाप करने लगी । "हे प्राण पति उठो तुम तो युधिष्ठिर को सब से प्यारे हो, नाथ तुम्हारे यज्ञ के घोड़े को मैंने छोड़ दिया, तुमको इस समय घोड़े के साथ होना चाहिये । तुम इस प्रकार भूमि पर क्यों पड़े हो ? हे कुरुवंश के सिरताज ! मेरे शरीर में प्राण तुम्हारे ही दम तक हैं हाय ! ईश्वर यह क्या हुआ, वह शूरमा जो कल औरों को प्राण दान देता था आज आप ही मुरदा बन रहा है। हे अलोपी ! तू आकर अपने पति की अवस्था को देख तेरी क्रूर बुद्धि ने कैसा अनर्थ उत्पन्न कर दिया है । हाय ! तू क्यों पश्चाताप नहीं करती तू ने अपने पुत्र के हाथ से पति का वध करा दिया । संसार की लीला विचित्र है पिता पुत्र एक साथ एक ही स्थान में पड़े हैं । हे श्रीकृष्ण जी तुम कहां हो ! आओ और अपने प्यारे मित्र की दशा को देखो । हे अलोपी यदि अर्जुन जीवित न हुआ तो दुनियां कहेगी कि तू ने ईर्षा के कारण पुत्र के हाथ से पति का वध करा दिया । मेरी तेरी दोनों की एक ही अवस्था है। पति और पुत्र दोनों एक साथ संसार से चल बसे । लोग कहेंगे निदान सौकन थी ईर्षा के वश होकर ऐसा

काम किया। अब मैं पति के साथ चिता में जल कर सती हो जाऊंगी।

थोड़ी देर के पश्चात् राजा बभ्रू वाहन की मूर्छा दूर हुई उसने देखा कि माता पिता के सिर को गोद में लिए हुए सती होने की तय्यारी कर रही है। उसके हृदय को बहुत आघात पहुंचा उसने ब्राह्मणों को सम्बोधन करके कहा "हे विप्रगणों! देखो तुम उस लड़के को क्या कहोगे जिसने अपने पिता का वध किया हो। पिता को मार कर मुझ को कोई सुख न मिलेगा। मुझ पर आपदा आयेगी मैं संसार में हत्यारा कहलाऊंगा, सब की उंगलियां मेरी ओर उठेंगी। मैंने पिता को मारा है मेरे लिए अब शान्ति कहां है। हे नागराज की पुत्री मैंने आज लड़ाई में वह काम किया जो तेरी इच्छा के अनुसार था, अब मैं भी उसी मार्ग को जाऊंगा जिधर को मेरा पिता गया है। हे नाग कन्या तू प्रसन्न हो, तू ने पिता पुत्र में लड़ाई करादी। शोक है कि गण्डीव धनुष का बांधने वाला वीर अर्जुन अपने पुत्र के हाथ से वध हुआ। मैं सौगन्द खाता हूँ कि अपने प्राण त्याग दूंगा। हे माता! तू सुन रख यदि यह वीरों का शिरोमणि जीवित न हुआ तो मैं भी आज प्राण त्यागे बिना न रहूंगा। हाय पिता के मारनेसे मैं नर्क गामी हुआ।

जब यह शोक की चिल्ल पुकार हो रही थी तो अलोपी विचार के साथ अर्जुन की लोथ को देख रही थी । उस के शरीर में विष का बुझा हुआ बाण लगा था इस लिए वह मूर्छित होगया था । अलोपी ने बभ्रूवाहन से कहा पुत्र उठ विलम्ब न कर इस ज़हर मुहरा को अर्जुन के घावोंपर लगा दे और वह अभी उठ खड़ा होगा तू क्यों घबड़ाता है? क्षत्री में क्षात्र धर्म्म का होना आवश्य है । वह अग्नि नहीं है जो ऊष्णता से खाली हो । तू बता तो सही पिताके साथ लड़ने के सिवाय और क्या उपाय था । अर्जुन ऋषि है उस पर कोई विजय नहीं पासक्ता । उसने स्वयम यह विषनाशक गुटका मुझ को दिया था कौन जाने प्रारब्ध ने पहले ही से यह प्रबन्ध रच रक्खा हो ।

विषनाशक गुटका घिस कर घाव पर लगाया गया अर्जुन ने नेत्र खोल दिए । सब का रोना धोना बन्द हुआ, अर्जुन बोला "मैं कहाँ हूं ? यह रूधिर कैसा है ? हां अब स्मरण हुआ तू मेरे साथ लड़ रहा था"।

अलोपी बोली प्राण नाथ ! "तुमने भीष्मपितामहजी को छल से वध किया था, उसने सिखण्डी को देख कर धनुषवाण हाथ से त्याग दिया था और ऐसी अवस्थामें तुमने उसको मार दिया था, उसी पाप के कारण आज तुम अपने पुत्र के हाथ से मारे गए होते परन्तु इस विष-

नाशक गुटका ने तुम को बचा दिया जो तुम स्वयम मुझ को किसी समय दे गए थे ।

अर्जुन यह सब वृत्तान्त सुनकर विस्मित हुआ फिर यह सब परस्पर प्रेम पूर्वक मिले । और अर्जुन एक रात के लिए मनीपुर के राजा का पाहुन हुआ फिर प्रातःकाल यज्ञ के घोड़े के साथ २ दूसरे देशों को रवाना हुआ ।

५–कान्ती ।

हिन्दू सभ्यता ने यदि संसार को कोई अद्वितीय फल प्रदान किया है तो वह हिन्दुओं की स्त्रियां हैं, हिन्दू जाति के अब तक जीवित रहने के अनेक कारण बताये जाते हैं परन्तु उन सब में विशेष रूप से हिन्दुओं की स्त्रियां हैं। हिन्दू पुरुषों को देखो काल के प्रातिकूल थपेड़े खाते २ उनकी आकृति कैसी बिगड़ गई है, आधा तीतर आधा बटेर, प्रत्येक बात में निरालापन, इनका अब तक कहीं पता भी न होता परन्तु हिन्दू स्त्रियों ने इनके कर्म्म धर्म्म सम्पूर्ण बातों की रक्षा का बीड़ा उठा लिया है, और जिस उत्तमता के साथ यह अपने कर्तव्य को पालन कर रही हैं वह अत्यन्त सराहनीय है। यों तो पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां सब जगह अधिक बुद्धिमान और दूरदर्शिता होती हैं परन्तु हिन्दुओं में इनकी स्थिति निराली है। यह जैसा कि शाक्तिक मत वाले शिक्षा देते हैं अन्नदा, बलदा और बुद्धिदा होती हैं, बल, विद्या, बुद्धि आदि अब भी जो कुछ तुम हिन्दुओं में देखते हो, यह सब इन्हीं देवियों का दान है। प्रातःकाल से लेकर सन्ध्या तक जिस आत्मत्याग और तपस्या के साथ यह देवियां घर के कामों को संभालती रहती हैं वह इन्हीं

का कार्य है, हिन्दू धर्म्म तो कभी का समाप्त होगया होता परन्तु इन देवियों ने इसको सुरक्षित रक्खा है. और आश्चर्य यह है कि बेचारी न पढ़ी न लिखी, किन्तु हिन्दू धर्म्म का कौन सा अंग है कि जिसका इनको ज्ञान नहीं है। हां! यदि अज्ञानता के कारण इनकी ऐसी दुर्दशा न की गई होती तो कभी सम्भव नहीं था कि हिन्दू इस प्रकार अधोगति की अवस्था को प्राप्त होते।

हिन्दू स्त्रियां क्या हैं और कैसी होती हैं? यह हम अनेक बार बता चुके हैं, और अपनी आयु भर इस राग को अलापते रहेंगे, परन्तु आज हम स्वयम् एक देवी की जिह्वा से हिन्दू स्त्रियों की विशेषता को सुनाने की चेष्टा करेंगे उसके शब्दों में यथार्थता कूट २ कर भरी है और उस से असलियत का पता लगता है।

यह देवी हमारी पवित्र माता कान्ती है, जो भरत के बड़े पुत्र पुष्कर जी की पतिव्रता स्त्री थी। भरत जी महाराजा रामचन्द्रजी के छोटे भाई थे। कान्ती परले दर्जे की स्वरूपा, बुद्धिमती और ज्ञानवान थी। इसके अतिरिक्त और सब गुणों से भी अलंकृत थी जो स्त्री-जाति से सम्बन्ध रखते हैं, धर्मात्मा परोपकारी पति परायण, सास श्वसुर की सेवका, पति की प्राण वल्लभा। जिस ओर से होकर निकलती थी लोगों की दृष्टि में पवित्रता की देवी की मूर्ति फिर जाती थी। भरत की स्त्री माण्डवी इसको पुत्री के समान प्रिया

समझती थी, कौशिल्या, सुमित्रा, केकई सबकी सब इसको प्यार करती थीं। सीता और उरमिला ने इस को अपनी आंख की पुतली बना रक्खा था। जब कभी पुष्करजी किसी महात्मा से मिलने के लिये जाया करते थे तो कांती भी उन के साथ रहा करती थी। यद्यपि यह दुनियां के सब से बड़े प्रतापी राजा के घराने की थीं तथापि इस का मन इतना नम्र और दयावान था कि यह जहां कहीं किसी बच्चे या स्त्री को विपद ग्रस्त देखती थी वहां ही उन के दुःखों को दूर करने का यत्न करती थी। धार्म्मक रानी मार्ग में चली जा रही है किसी गरीब का छोटा लड़का रो रहा है, रानी झट उस को गोद में उठा लेती है और उस के आंसू पोंछ कर कुछ न कुछ खिलौने अथवा खाने पीने की वस्तुयें देकर फिर आगे बढ़ती है। ऋषियों की स्त्रियां इस को देख कर निहाल होजाती थीं। सीता, उरमिला, आदि बात चीत कम किया करती थीं परन्तु यह देवी सुयोग्य वक्ता भी थी जिह्वा पर सरस्वती रहती थी जब बात चीत के लिये अपना मुख खोलती थी तो ऐसा प्रतीत होता था मानों पुष्प झड़ रहे हैं।

वह समय हिन्दू सभ्यता की उन्नति का समय था। स्त्रियों में विद्या और बुद्धि का प्रचार था। वह जानती थीं कि संसार में उन की स्थिति क्या है। वह आजकल की तरह चार दीवारी के भीतर कैद नहीं रहती थीं। अयोध्या

के रनिवास में कभी २ जब भद्र जनों की स्त्रियां एकत्र हुआ करती थीं तो विद्या विषयक चरचा हुआ करती थी। कान्ती ऐसे अवसरों पर अच्छे व्याख्यान दिया करती थी। मांडवी प्रायः कहा करती थी कि कांती सब विद्यायें माता के पेट से पढ़कर आई है। इस ने सरस्वती को वश कर लिया है। जो वात करती है सो निराली करती है।

एक समय का वर्णन है कि अयोध्या में स्त्री समाज का उत्सव हुआ था जिसमें संपूर्ण भद्र महिलायें सम्मिलित हुई थीं। स्त्रियों ने मिलकर ऋषि पत्नियों से उपदेश करने की प्रार्थना की। उन सबने कांती की ओर संकेत किया सब की आज्ञानुसार जो संक्षिप्त व्याख्यान दिया था वह सचमुच एक आदर्श स्त्री के योग्य था। उसने वड़ी गम्भीरता के साथ कहाः—

"वहिनों! संसार में स्त्रियों के कर्म्म धर्म्म वहुत हैं। सद्शास्त्र उनकी व्याख्याओं से भरे पड़े हैं। कुल धर्म्म, जाति धर्म्म, सामाजिक धर्म्म, आदि नाना प्रकार के धर्म्म हैं। परन्तु जितने धर्म्म हैं उन में से कोई भी ऐसा नहीं है जिस पर समय २ पर सोचना न पड़े। किन्तु स्त्रियों का एक धर्म्म ऐसा है जिसपर कभी सोचने की आवश्यकता नहीं, सर्व कालों में वह एक रस रहता है। वह स्त्रियों का आदर्शक धर्म्म है। अर्थात् स्त्री पति परायण हो, पति भक्तिको सर्वो-परि समझे। पति की सेवा, पति का सन्मान और पति के

गौरव का सदैव ध्यान रहे । सोते जागते, उठते बैठते, जो स्त्री पति परायणा रहती है उसका सदैव कल्याण हुआ करता है । यह पतिव्रत धर्म्म कहलाता है । पतिव्रत का धारण करना सर्व स्त्रियों का धर्म्म है । जो स्त्री पति की सेवा नहीं करती वह अधम है । उसके विषय में शास्त्र कहते हैं कि वह अधम है, वह पिशाचनी के दुःखों को प्राप्त होगी । पति चाहे कैसाही हो, दरिद्री हो, निर्बल हो, रोग-वश हो, स्त्री का धर्म्म है कि उसकी सेवा में तत्पर रहे और उसकी अवस्था को पलट दे । यदि तुम विश्वास करो तो मैं यहां तक कह सकती हूं कि किसी पतिव्रता स्त्री का पति कभी निर्धन, निर्वल अथवा अज्ञानी नहीं हो सकता। स्त्रियां संसार में इस लिये आई हैं कि निर्धन को धनवान निर्वल को वलवान और जड़ को चैतन्य वनादें । जहां और जिस घर में तुमको लक्ष्मी और सरस्वती न दिखाई दें वहां तुम समझलो कि उस घर की स्त्रियों में कोई न कोई दोष अवश्य है । वह अपने धर्म्म को नहीं जानतीं। अथवा धर्म्म का पालन नहीं करतीं । अन्यथा यह कभी हो नहीं सकता कि पुरुष रोगी रहैं, निर्धन रहैं दुःखी रहैं। स्त्रियों का कर्त्तव्य है कि वह अपनी बुद्धिमता से घर को स्वर्गधाम वनादें । जो लोग उस घर में वसते हों वह सव सुखी रहें जो स्त्री अपने पति की भक्ति करती है वही सच मुच लक्ष्मी और सरस्वती की पुत्री कहलाती है। पतिव्रतास्त्री

मन, वचन, कर्म्म से दूसरे पुरुष के चिन्तन तक को अपने मन में नहीं आने देतीं। वह उत्तम स्त्रियां कहलाती हैं। जो दूसरे पुरुषों को पिता, भ्राता, और पुत्र समझती हैं। वह मध्यम हैं। जो केवल लोक लाज से और धर्म्म विचार से अपने पति की सेवा में रहती हैं वह निकृष्ट हैं। पतिपरायणा स्त्रियों में योग का बल होता है। उन का जीवन आश्चर्य जीवन होता है। चाहे किसी श्रेणी की स्त्री हो यह उसका परम धर्म्म है। इस पर उसको कदापि विचार की आवश्यकता नहीं है। यह सब समयों में एक रस रहता है। शेष जो धर्म्म है उनको समयानुसार विचार करना चाहिए इत्यादि इत्यादि"।

यह व्याख्यान बहुत लम्बा है हम इस को यहां यथा तथा अंकित नहीं करते। दूसरे अवसर पर जो उसने भाषण किया था वह और भी विचारने के योग्य है। और उससे इस देवी की बड़ाई और तीव्र बुद्धिता का प्रबल प्रमाण मिलता है।

कहते हैं कि जब श्रीरामचन्द्र जी ने अश्वमेधयज्ञ करने की इच्छा की तो एक उत्तम घोड़ा रीति अनुसार छोड़ दिया गया और उसकी रक्षा का काम शत्रुहन को सौंपा गया। जो रामचन्द्र जी के छोटे भाई थे। पुष्कर जी की अपने चचा के पास जाने की इच्छा हुई। सिंह बच्चों का साहस सिंहो का ही जैसा होता है। वह युद्ध को स्वर्गधाम

समझते हैं। जो बात भक्तों को भक्ति से, दानी को दान से, ज्ञानी को ज्ञान से, योगी को योग से, तपस्वी को तप से, प्राप्त होती है वह क्षत्री को संग्रामभूमि में वीरता के कार्य को यथावत् करने से प्राप्त होती है। यदि वह वीरता करके विजय की करणी करता हुआ जूझ जाता है तो शत्रुओं के शिरों के टीलों पर पांव जमाता हुआ सीधा स्वर्गलोक को जाता है और स्वर्ग की देवियां हाथों में राज सिंहासन लिए हुए उसका उद्वीक्षण करती हैं। क्षत्री का धर्म्म कैसा शोभायवान और श्लाघ्नीय है। क्षत्री कैसे तपस्वी, कैसे उत्साही और कैसे महान होते हैं। इनके भाव योगियों में भी बहुत दिनों के पश्चात् उत्पन्न होते हैं।

श्री कबीर साहब जी का वचन हैः—

दोहा—साधु सती और शूरमा, इनकी बात अगाध।
आशा छोड़े देह की, तिनमें अधिका साध॥
खेत न छाड़े शूरमा, जूझै दो दल मांहि।
आशा जीवन मरण की, मन में रक्खे नांहि॥

सोचने वालो सोचो। क्षत्रियों का धर्म्म कैसा सुगम है। इनको आप अपने शरीर के साथ लगाव नहीं होता, इनका लगाव सदैव अध्यात्मिक आदर्श की ओर रहता है इनमें देह पना नाम को भी नहीं होता। आत्मा के प्रबल भाव से परिचालित होकर हर समय इस नाशवान शरीर के त्यागने के लिये तैयार रहते हैं। क्या यह योगी नहीं हैं? हम तो

कहेंगे कि इनको योग की असलियत से एकाशार होने का हर समय अवसर रहता है।

पुष्कर ने शत्रुहन का साथ देना चाहा, शत्रुहन जी ने कहा जा अपनी माताओं से विदा हो आ। क्षत्री के जीवन में हर समय मौत की आशंका रहती है। क्षत्री संग्राम के लिए पैदा हुआ है, उसकी राह कांटों पर से होकर गई है। संसार में उसके वास्ते नरम विछौने अथवा सुख स्वाद का जीवन नहीं प्रदान किया गया। पुष्कर जिसके हृदय में वीरता के भाव की लहरें उठ रही थीं खुशी खुशी अपनी माताओं के पास गया। बेचारी सीता तो गृहत्यागी होचुकी थीं इस समय वह वाल्मीक ऋषिजी के तपोवल वन में तपस्या का जीवन व्यतीत कर रही थीं। शेष और माताएँ थी। कौशिल्या, सुमित्रा, केकई आदि ने प्रसन्न होकर अशीर्वाद दिया। पुत्र! जा खुशी से अश्वमेध के घोड़े की रक्षा कर जो सुयश तेरे पूर्वजोंको मिला था वह तुझे भी प्राप्त हो। जा पुत्र अपने कुलका नाम उजागर कर, अपनी माता की कोख पवित्र कर, रघुवंशियों के गौरव की रक्षा कर। दादियों का आशीर्वाद लेकर पुष्कर माण्डवी, उरमिला आदि के चरणों की ओर झुका उन सब ने आशीर्वाद दिया। और साहस के बढ़ाने वाली बातें कहीं।

देखो एक वह समय था जब कि धर्म्म को जानने-वाली क्षत्रानियां इस प्रकार संग्राम भूमि में अपने पुत्रों को लड़ने के लिए भेजा करती थीं, और एक समय आज है कि क्षत्रियों के लड़के रात को मकान के आंगन में बाहर निकलते हुए डर जाते हैं, विचित्र परिवर्तन है ! आकाश ने भूमि का रूप धारण किया है। और सब ने तो आशीर्वाद दिया परन्तु उरमिला ने हंसी के स्वरूप में कहा पुत्र जा कान्ती से तो आशीर्वाद ले आ अभी तेरा विवाह होकर आया है पति पत्नी का बड़ा अधिकार होता है।

माता की आज्ञा पाकर बहादुर पुष्कर अपनी धर्म्म पत्नी के पास गया और उस से कहा "सती ! अश्वमेध का घोड़ा छोड़ा गया है शत्रुहन उस की रखवाली पर नियत हुए हैं। मैं भी साथ जा रहा हूं ताकि हम चचा भतीजे उस को शत्रु के हाथ में पड़ने न दें, माताओं ने आज्ञा दे दी तू भी आज्ञा दे दे, ताकि मैं इस आवश्यक काम को साहस और उत्साह के साथ पूरा करूं।

पुष्कर के इस कथन का उत्तर कान्ती ने जिस आवेश भरे शब्दों में दिया है वह इस काल के प्रत्येक स्त्री पुरुष के विचार के योग्य है, वह कहती है:—"महाराज मेरे भाग्य बहुत अच्छे थे जो मेरा सम्बन्ध आप के साथ हुआ स्त्रियों को अपने पतियों के बल के सिवाय और

किसी बात का घमण्ड नहीं होता, वह चाहती है। कि उनका स्वामी पुरुषों की सभा में सिंह की तरह गर्जता हुआ और सूर्य्य की तरह चमकता हुआ दिखाई दे। जिस स्त्री को ऐसा प्रतापी पुरुष मिलता है वह हर समय अपने सौभाग्य को सराहती रहती है, आप मुझ से आज्ञा लेने आए हो क्या मैं आप से पृथक् हूं, जो विशेषता परछाई को शरीर के साथ है, जो विशेषता प्रकाश को सूर्य्य के साथ है, जो विशेषता पुरुष को प्रकृति से है, वही अवस्था हे स्वामिन! मुझको तुम्हारे साथ है, मेरा मुझ में कुछ नहीं है जो कुछ है तुम्हारा है स्त्री को जो लोग अर्द्धाङ्गी कहते हैं वह भूल पर हैं। स्त्री केवल देखने के लिए पुरुष से पृथक है वास्तव में वह उस से पृथक नहीं है जो कुछ है पुरुष का है, स्त्री का क्या है, पुरुष का वीर्य्य लेकर स्त्री उस को बच्चे के रूप में परिवर्तित करके फिर उस को सौंप देती है। पुरुष के बल से स्त्री बलवान है, पुरुष के धन से स्त्री धनवान है, पुरुष की प्रतिष्ठा से स्त्री प्रतिष्ठित है, स्त्रियां जब पहले पहल पति के घर आती हैं तो अपना नाम और रूप दोनों खोदेती हैं। पुरुष के नाम से पुकारी जाती हैं और पुरुष ही के रूप से वह रूपवाली होती है। लोग कहते हैं स्त्रियां राज करती हैं, उन में पुरुषों से अधिक तेज होता है, किन्तु यह नहीं समझतीं कि यह तेज किस का है ? सूर्य्य

चमक रहा है उस की गरमी सब सह लेते हैं परन्तु जब उसकी किरण रेत पर पड़ती है तो वह इतनी गरम होजाती है कि मुसाफिर का पांव जुलसने लगता है। गरमी सूर्य्य की है, रेतकी नहीं है। इस प्रकार तेज पुरुषका है स्त्रीका नहीं है, महाराज जिस प्रकार चन्द्रमा सूर्य्यको लेकर प्रकाशित होता है वैसे ही स्त्री पुरुषके प्रकाश से ज्योतिर्मान होती है सूर्य्य प्राण है चन्द्र रइ है, रइ प्राणको अनुकरण करती है, यही स्थिति हे प्राण पति ! स्त्रीकी है। आप आनन्दसे जावें और मर्य्यादा के झण्डे को ऊंचा करें। आहा ! मुझ को कैसा आनन्द होगा जब मुझे अयोध्या की स्त्रियां कहेंगी कि कान्ती देखो ! तेरे पति ने इतने शत्रुओं को परास्त किया, धर्म्म की रक्षा की और रामचन्द्र जी के घोड़े को किसी के भी हाथ पड़ने नहीं दिया। महाराज ! आप रण क्षेत्र में वीरता दिखायेंगे तो स्त्रियों में मेरी प्रतिष्ठा होगी। स्वामिन ! आपका वंश संसार में सब से अधिक प्रतिष्ठित समझा जाता है। इस का कारण केवल यह है कि आप के पूर्वज सदैव से वीरता के लिए प्रसिद्ध हैं, महाराज रघु ने दिगविजय करके सम्पूर्ण जगत् को अपने आधीन वनाया था। दशरथ हमेशा इन्द्र की सहायता को जाया करते थे। तुम्हारे चचा श्रीराम चन्द्र जी ने रावण जैसे बली असुर को मार कर कीर्ति लाभ की थी। तुम उन के पुत्र हो पुत्र का धर्म्म है कि पिता का नाम उज्ज्वल करे।

जाओ कुल की, गुरू की, स्त्री और वंश की लज्जा रक्खो। जिस प्रकार आज सभा में श्री रामचन्द्र जी के गुण गाये जाते हैं उसी प्रकार तुम्हारे भी गाए जांए। और मुझ को देख कर अयोध्या की स्त्रियां प्रसन्न होकर कहैं कि कान्ती का पति कैसा वीर और योधा है कि जिस के सन्मुख किसी को खड़े होने का साहस नहीं होता। महाराज ! क्षत्राणी को अपने पति के वीरभाव की प्रतिष्ठा के सिवाय और किसी बात की अभिलाषा नहीं होती। यह बात आप हर समय स्मरण रखना, आयु में कीर्ति और अपकीर्ति का अवसर बार २ नहीं आता। जो यश और कीर्ति लाभ करते हैं उन्हीं का जीवन कुछ सफल होता है प्राणनाथ ! तुम आनन्द से जाओ मेरा और अपना जीवन सफल करो। क्षत्री की प्रशंसा इसी बात में है कि वह सिंहों की तरह शत्रुओं के दांत खट्टे करे। मैं तुम्हारी प्रशंसा हर समय सुनने की इच्छुक रहूंगी और अन्त में यह कहती हूं कि यह मेरा प्राण भी हमेशा तुम्हारे साथ रहेगा"।

कान्ती की बातको सुनकर पुष्करका साहस और भी बढ़ा उसने उस सती को गले से लगा कर उसका मुख चुम्बन किया और कहा हे क्षत्राणी ! तू निश्चय रख पुष्कर जीते जी कभी तुझ को स्त्रियों में लज्जित न होने देगा। तेरी आग भरी बातें हर समय मैदान जङ्ग में मुझ को

स्मरण रहेंगी । कान्ती ने पति को पान दिया और वह हंसता हुआ वहां से बाहर निकला । शत्रुहन बाहर खड़े हुए मार्ग देख रहे थे । पुष्कर उन के साथ हुआ और दोनों सिंह पुरुष की तरह घोड़े के पीछे २ चल दिये। इस बात के यहां वर्णन करने की आवश्यकता नहीं कि वह किस वीरता के साथ शत्रुओं को मैदान युद्ध में हराता रहा। सारांश यह कि उसने प्रत्येक अवसर पर वीरता से काम लिया और घोड़े को कुशल पूर्वक फिर लौटा कर अयोध्या में लाया और रामचन्द्र जी का यज्ञ पूरा हुआ।

कान्ती बड़ी सुयोग्य स्त्री थी । उस को प्राचीन इतिहासों के सुनने की बड़ी इच्छा थी । पुष्कर वहां से जब लौटा तो अपनी पत्नी से मिल कर कहने लगा। प्रिया ! तू कहती थी सूर्य्य से प्रकाश लेकर जिस प्रकार चन्द्रमा चमकता रहता है उसी प्रकार तू मेरी कीर्ति से प्रकाशित है । यह मिथ्या है, सत्य यह है कि मुझ में जो कुछ वीरता है वह तेरे कारण से है तेरे शब्द मुझ को रण क्षेत्र में भी सुनाई देते थे । मुझे जो कृतकार्य्यता हुई है वह केवल तेरे साहस बढ़ाने वाले वचनों से हुई है । यदि मुझ में कायरता होती तो भी सम्भव था कि मैं तेरे साथ रह कर शूरमा बन जाता । तेरी पवित्रता के कारण से मैं पवित्र हूं । तेरी वीरता के कारण से वीर हूं, तेरी भलाई के कारण से सब में भला हूं । पग २ पर तेरी नेकी

और पवित्रता का ध्यान मुझको मेरे कर्तव्य स्मरण कराता रहता है, और मैं बहुत सौभाग्य शील हूं जिस को परमात्मा ने ऐसी सुन्दर सौभाग्यशीला स्त्री प्रदान की है। तुझ जैसी स्त्री को पाकर मैं कभी भी दुखी न हूंगा। तू देवी बनकर मेरी रक्षा करती रहेगी। कान्ती पति की ऐसी मीठी बातों को सुन कर मुस्कराती रही इस के उत्तर में उस ने केवल अपनी हार्दिक कृतज्ञता का प्रकाश किया और अधिक वार्तालाप इस अवसर पर नहीं की।

चिरकाल तक यह आदर्श जोड़ा सुख पूर्वक अयोध्या में रहा। उस के पश्चात् पश्चिमी देशों के गन्धर्वों ने कुछ विद्रोह मचाया श्री रामचन्द्र जी ने भरत जी को उन के दमन करने के लिए वहां भेजा, कई वर्ष के पश्चात् वह सर्वथा आधीन हुए। श्री रामचन्द्र जी ने वह देश पुष्कर जी को राज करने के लिए प्रदान कर दिया। भरत जी ने अपने प्यारे पुत्र के नाम से एक नगर बसाया और उस का नाम पुष्करावती नगर रक्खा। पुष्कर कान्ती को लेकर पुष्करावती नगरी को आया, और भरत जी ने इस सुन्दर जोड़े को सिंहासन पर बैठा कर अपने हाथ से राज तिलक किया। और वह बहुत दिनों तक न्याय और धर्म्म के साथ राज करते रहे। कान्ती हमेशा अपने पति को सद्मार्ग पर चलाने की चेष्टा करती रही।

प्यारे हिन्दू भ्राताओ ! प्राचीन समय की हिन्दू मातायें इस प्रकार की थीं। और हम सब को मिल कर ईश्वर का धन्यवाद करना चाहिये कि अब तक हमारी स्त्रियों ने संसार में अपनी विशेषता को स्थिर रक्खा है। क्या यह आवश्यक नहीं है कि हम उनकी प्रतिष्ठा करते हुए उन के हज़ारों वर्षों के दबे हुए संस्कारों को उभरने का अवसर दें ताकि वह हिन्दूपन के उत्तम संस्कारों को अपने दूध के साथ बच्चों की घुट्टी में मिश्रित (शामिल) करें और फिर किसी समय हम में श्रेष्ठ और धार्म्मिक सन्तान उत्पन्न हो जो एक बार भारतवर्ष को फिर स्वर्गः धाम बनादे।

६—शशिव्रता।

इस देश में एक ऐसा समय था जब कि श्रेष्ठ और धार्मिक स्त्रियां शूर वीर योधाओं पुरुषों के साथ विवाहे जाने की इच्छा किया करती थीं। उनके निकट पुरुष का आदर्श यह था कि वह शूरमा हो, निडर हो, वीर हो, तलवार का धनी हो। जिस समय संग्राम भूमि में सिंह की तरह विचरता हुआ गर्जने लगे तो शत्रुओं के छक्के छूट जायें। क्षत्रानियां केवल ऐसे ही पुरुषों के साथ विवाहे जाने की इच्छुक रहा करती थीं।

उस समय की क्षत्राणी स्त्रियों के हार्दिक भावों को यदि खोल कर देखा जाता तो उन में अस्वार्थ और नीच भावों का लेशमात्र भी न पाया जाता। चाहे एक योधा पुरुष के पास दो तीन रानियां पहले से वर्तमान हों परन्तु राज कन्यायें उसी को अपना वर बनाना चाहती थीं और किसी धन अथवा ऐश्वर्यवान से विवाहित होने की इच्छुक नहीं रहती थीं। और किसी के साथ विवाह की चाहना नहीं रखती थीं। यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वह विवाह की रीति को लोलुपता की दृष्टि से वरन् किसी और ही दृष्टि से देखती थीं। उन का विवाह वास्तव में आत्मिक संबध प्रतीत होता है। क्षत्री कन्यायें सिवाय

वीर पुरुष के और किसी के साथ विवाही जाना पसंद नहीं करती थीं। माता पिता समझाते थे कि उस के पास पहले से ही दो चार छः स्त्रियां हैं परन्तु वह कदापि नहीं सुनती थीं। जिस शूरमा क्षत्री की वीरता की छवि उन के नेत्रों में बस गई वही सामाजिक रीति से, वैदिक रीति से, लौकिक रीति से उनका पति बनता था। यदि विवाह हो गया तो क्या कहना यदि विवाह न हुआ तो सारी आयु उसी का नाम लेकर जीती थीं, यह उनका आदर्श हुआ करता था। और जिसमें किंचित मात्र भी समझ बूझ है वह इन देवियों के पवित्र भावों का सम्मान करता था। यह संसारी नहीं वरन् स्वर्गीय प्राणी हुआ करती थीं, और इन को मनुष्यों का सिरताज कहना कदाचित अनुचित न होगा। प्रकृति चाहती है कि पुरुष के साथ उसका संयोग हो। क्षत्री कन्यायें केवल वीर, साहसी, निडर और शूरमा पति ही को अपने आपको सम्पति बनाना चाहती थीं। सत्य है स्त्री केवल उसी पुरुष के बाईं ओर शोभा पाती है जिस में उपरोक्त गुण वर्त्तमान हों।

जिस समय देश में बहु संख्यक ऐसी स्त्रियां रही हों तो कैसे संभव था कि पुरुषों में नाम को भी भीरुता और क़ायरता आने पाती, क्योंकि जिस आग से ताप, गति और आवेश उत्पन्न हुआ करता था वह अग्नि आर्य्यवर्त के हवन

कुण्ड में प्रति समय प्रज्वलित रहता था। और वह अग्नि स्त्री जाति थी।

यवनों को इस देश में घुसने का अवसर पाने से पहले वीरशिरोमणि पृथ्वीराज में क्षत्रियपन के संपूर्ण गुण कूट २ कर भरे थे। शत्रु मित्र सब उसकी वीरता की प्रशंसा करते थे। राज महलों में इस सिंह पुरुष की वीरता की चरचा रहती थी। उसकी वीरता की प्रशंसा निकट और दूर के मुल्कों में गूंजा करती थी। और यही कारण है कि प्रायः राज कन्याओं को उसके साथ विवाहे जाने की रुचि रहा करती थी। इस में कोई संदेह नहीं कि ऐसे विवाहोंके कारण हिन्दुओं का राज सदा के लिये इस देश से छिन गया, उन की स्वाधीनता छिन गई, और आज वह बुरी तरह कालके हाथों दुःख और क्लेश सह रहे हैं। तथापि कौन ऐसा मनुष्य है जो इन देवियों के हार्दिक भावों और पवित्रआदर्श का सन्मान न करेगा जो पृथ्वीराज के साथ विवाहे जाने की इच्छा रखती थीं।

जिस कन्या के कारण से दिल्ली और क़न्नौज के नरेशों के मध्य में शत्रुता की बुनियाद पड़ी उसका नाम शशिव्रता था। यह देवनगरी के राजा की राजकुमारी थी। जिस तरह तारामण्डल के बीच में पूर्णमाशी का चन्द्रमा शोभाको प्राप्त होता है वैसेही शशिव्रता रूपवती स्त्रियों के बीचमें विचित्र तेज और प्रकाश के साथ चमकती थी। लड़की बड़ी रूप-

वान थी । और धर्म्म बुद्धि, विवेक, विद्या में कुशल थी, प्रकृति ने इस स्त्री के मस्तिष्क को बहुत ही सूक्ष्म और अद्भुत बनाया था । एक ओर यदि वह चित्रकारी के गुण में विचित्र थी । ईश्वर ने उसको काव्य के विषय में भी अच्छा ज्ञान दिया था । जब एकान्त अवस्था में बैठती थी तो प्रायः भजन दोहे आदि रचा करती थी । शोक है कि समय के उलट पुलट ने इस सुयोग्य नारी की कविता को सुरक्षित रहने का अवसर नहीं दिया । अन्यथा जैसे मीरां-बाई के भजन और दोहे सबको प्रिय हैं वैसे ही इस स्त्री के रचे हुये भजन और दोहे भी सबको प्रिय होते । शशिव्रता न केवल धार्म्मिका, कवि, चित्रकारी और गान विद्या में निपुण थी वरन् युद्ध विद्या के करतबों से काले नाग की तरह सनसनाते हुये तीर निकलते थे तो शेर भी उन को देखकर कांप जाता था ।

जब राजकुमारी शशिव्रता युवा हुई तो माता पिताको उसके विवाह की चिन्ता हुई । देश २ के राजाओं के चित्र मंगाये गये । और उनके कुल के वृत्तांत वर्णन करके शशि-व्रता को सुनाये गये शशिव्रता ने उनमें से किसी के विषय में भी सम्मति प्रगट न की । अज्ञानी पिता ने शशिव्रता की अनुमति लेने के बिना ही जयचन्द वालिये कन्नोज के साथ अपनी पुत्री का नाता करना स्वीकार किया ।

इसमें सन्देह नहीं कि महाराजा जयचन्द अपने समय का बड़ा प्रतापी ऐश्वर्यवान और शक्तिशाली महाराजा था। कला कौशल में भी बड़ा प्रसिद्ध था, उसके साथ किसी को युद्ध करने का साहस नहीं होता था, सब प्रकार के मनुष्य उसके दरबार में प्रस्तुत रहा करते थे। देवनागरी के अक्षर जो बड़े सुन्दर और अपनी विशेषता के लिए दुनियां भर में प्रसिद्ध हैं इसी महाराजा जयचन्द के बनाये हुए हैं। और सब से पहले उसी के दरबार में इनका प्रचार हुआ था।

जिस समय जयचन्द को मालूम हुआ कि देवनगर का राजा अपनी रूपवती कन्या उसको व्याहना चाहता है तो वह अपने मन में प्रसन्न हुआ, परन्तु ईश्वर को कुछ और ही स्वीकार था, शशिव्रता ने अपने मन में पृथ्वीराज को अपना पति वरण किया था, इसका फैसला कई वर्षों पहले हो चुका था, और इसलिए पहली बार जब माता ने उसके विवाह का समाचार सुनाया तो वह धक सी रह गई। राजपूतनी की प्रतिज्ञा कैसे पलट सकती है। सूर्य चाहे पूर्व के स्थान में पश्चिम में निकले। सुमेरु पर्वत पर चाहे समुद्र लहराने लगे, यह सम्भव हो तो हो परन्तु सच्ची राजपूतनी सच्ची राज कन्या, सच्ची क्षत्री लड़की अपनी प्रतिज्ञा को नहीं पलट सकती। मनुष्य एक ही बार उत्पन्न होता है एक ही बार मरता और एक ही बार व्याहा जाता है। संस्कार को बारबार बदलते रहना उचित नहीं है। आकाश और

भूमि चाहे पलट जांय परन्तु मन में जो ठन चुकी है वह कभी नहीं पलटेगी ! वह देर तक मन ही मन में विचार करती रही कोई उपाय समझ में नहीं आया, जयचन्द बलवान था, उसका पिता दुर्बल था, उस में साहस नहीं था कि वह जयचन्द का सामना करता। इस के सिवाय यह अपने वचन को भी पलट नहीं सक्ता था, राजपूत का वचन उस के प्राण के साथ रहता है:—

चौपाई—रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाहिं पर वचन न जाई॥

निदान उस ने सोच विचार कर गुप्त रीति से पृथिवी राज को पत्र लिखा, क्योंकि उस की कठिनता को मेटने वाला केवल वही था, पत्र बड़ी दीनता और प्रीति के साथ लिखा हुआ था उस में बताया गया था कि जिस प्रकार रुक्मिणी जी को शिशुपाल के हाथ से श्रीकृष्णजी ने बचाया था उसी प्रकार आप मुझे आकर बचा लेजायें।

समय थोड़ा था देवनगर का राजा विवाहकी प्रारम्भिक रीती को पूर्णकर चुका, विवाह की तयारियां हो रही थीं, जिस मनुष्य के द्वारा शशिव्रता ने दिल्लीपति को पत्र भेजा वह एक वृद्ध ब्राह्मण साधू था। वह राज कुमारी का पत्र लेकर दिल्ली पहुंचा परन्तु पृथ्वी राज दिल्ली में नहीं था अजमेर गया हुआ था, साहसवान ब्राह्मण पृथ्वीराज का पता लगाता हुआ वहां भी पहुंच गया परन्तु शोक! कि

वहां भी उस को पृथ्वीराज न मिला, यह वहुत घवड़ाया परन्तु यह धीर भावी था इस लिए फिर साहस किया और खोज लगाता हुआ अचल गढ़ की ओर जा पहुंचा वहां पृथ्वीराज से भेंट होगई। वहादुर चौहान चन्द्र वरदायी रामराय गोजरके साथ आ रहा था क्योंकि वहां के राजा जितैसी परमार की लड़की ने भी उस को इसी प्रकार पत्र लिख कर अपनी सहायता के लिए बुलाया था। पृथ्वीराज इस स्वयम्बर का जीते हुए अपने सरदारों और नई रानी को साथ लिये हुए दिल्ली को जारहा था, ब्राह्मण ने उस को देखते ही उच्च स्वर के साथ घोड़ा थामने की प्रार्थना की पृथ्वीराज ठहर गया, ब्राह्मण ने झट पट शशिव्रताका पत्र पृथ्वीराजके हाथ में दिया। पृथ्वीराज पत्र पढ़कर मुस्कराया और चन्द्र वरदायी के हाथ में देकर कहा अब क्या करना चाहिये ? उसने वहुत कुछ सोचा, वेचारा क्या कहता क्या न कहता, वह जयचन्द के साथ लड़ाई करना उचित नहीं समझता था, परन्तु निर्वल स्त्री की सहायता न करना, क्षत्रिय धर्म्म के विरुद्ध था, अधिक सोचने विचारने का समय नहीं था, निदान चन्द्र वरदायी ने सलाह दी, कि देवनगर को पहुंचना चाहिए परन्तु पृथ्वीराज ने कहा कि यदि शशिव्रता अपनी प्रतिज्ञा को वदल दे तो क्या आवश्यकता है कि व्यर्थ लड़ाई की जाय इस लिए उसने ब्राह्मण से कहा "देवता ! तुम जाकर

राजकुमारी को समझा दो कि इस में कई वंशों के नाश होने की सम्भावना है। वह अपनी प्रतिज्ञा बदल दे, इस के अतिरिक्त में इच्छन कुमारी के साथ विवाह भी कर चुका हूं"।

अपनी ओर से उसने ब्राह्मणको समझा बुझाकर देव नगरकी ओर भेज दिया, और अपने साथियों समेत स्वयम भी गुप्त रीति से उस के पीछे २ चला क्योंकि वह क्षत्रा-नियों की प्रतिज्ञा को जानता था। साथ ही चामुण्ड राय नामी अपने सेनापति को देवनगर पहुंचने का पत्र लिख भेजा।

इधर जयचन्द भी बहुत बड़ी सेना लिए देव नगर को जारहा था, किन्तु पृथ्वीराज उससे पहले पहुंचा। संयोग से शशिव्रता का वही दूत फिर राज कुमारी का पत्र लिए हुए पृथ्वीराज को मिला, महाराज ने उस से पूछा राजकन्या का क्या हाल है ? दूत बोला यह उस का पत्र है इस में उस ने सब कुछ लिख दिया है, पृथ्वीराज ने पत्र को दूत के हाथ से ले लिया, पत्र पद्य (नज़्म) में था, रचना बड़ी सरल और हृदय स्पर्शी थी, जिन शब्दों में उस ने अपने आन्तरिक भावों को वर्णन किया था उन में किंचित परिवर्तन के पश्चात् हम यहां अंकित करते हैं:—

दोहा—पांच सात लाघन करे, सिंह घास नहीं खाय।
टेक न छांड़े शूरमा, सती परन नहिं जाय॥

उड़गण उतरें गगन सों, पृथी रसातल जाय।
निज स्वामी नहि परिहरों, सती परन नहिं जाय॥
गिरै जो ऊंचे शिखर से, टूक टूक हो जाय।
डूबि मरे वरु गङ्ग जल, सती परन नहिं जाय॥
वरु बरसै विष चन्द्रमा, वरु सुमेरु बहि जाय।
तेज घटै वरु भानु को, सती परन नहिं जाय॥
उलट जाय ब्रह्माण्ड वरु, ईश करै अन्याय।
सत विहीन वरु हो मही, सती परन नहिं जाय॥
पपिहा प्यासा स्वातिका, अन्य न नीर सुहाय।
दुख सुख सिर ऊपर सहै, सती परन नहिं जाय॥
हांड गलै माटी मिलै, देह भस्म हो जाय।
सुरति न विसरै पीव की, सती परम नहिं जाय॥

इत्यादि। इत्यादि। इत्यादि।

पत्र के पढ़ते ही पृथ्वीराज का चेहरा आवेश से लाल होगया, राज कुमारी के हृदय से जो विद्युत युक्त प्रभाव निकल कर इस पत्र में आगए थे उन्होंने वहादुर चौहान के हृदय को जड़ से पकड़ कर हिला दिया, उस में विद्युत का प्रभाव था, और उस में विचित्र शक्ति भर गई थी, चन्द्र वरदायी ने पत्र को लेकर पढ़ा।

पद्य—मणि का मोल महीपति जानै, अथवा रत्न विसाही।
ईश की महिमा साधू जानै, और से जानि न जाही॥

(श्री वाचस्पति देव कवि जीं)

चन्द्र वरदायी स्वयम महा कवि था, परन्तु शशिव्रता की वाणी को पढ़कर वह भी चकित रह गया, दिल्ली पति के साथियों ने घोड़ों को ऐड़ लगाई और तुरंत देव नगर में जा पहुंचे जयचन्द की सेना धीरे २ कूच करती हुई जारही थी, इस लिये जयचन्द वहां देर से पहुंचा, पृथ्वीराज ने उस ब्राह्मण की सहायता में राज कुमारी को मरदाने वस्त्र पहना कर घोड़े पर सवार किया और दिल्ली का मार्ग लिया जिस चतुरता के साथ यह कार्य्य-वाही की गई उस की व्याख्या व्यर्थ है सार यह कि:—

जब जयचन्द देव नगर में पहुंचा तो वहां शोक छाया हुआ था। यह बात चारों ओर फैल गई थी कि राय पिथौरा शशिव्रता को भगा ले गया जयचन्द को विश्वास नहीं आया उसने समझा कि देव नगर के राजा ने जान बूझ कर मेरे साथ ऐसा किया है, और इस अपमान का बदला लेने के निमित्त उसने यह उपाय सोचा कि देव नगर को तहस नहस कर दिया जाय, और इस बात की उसने अपने सेनापति को आज्ञा देदी परन्तु ईश्वर को यह स्वीकार नहीं था, जिस समय जयचन्द की सेना ने देव नगर पर आक्रमण करना चाहा ठीक उसी समय चामुण्डराय पृथ्वीराज का सेनापति अपने शूरमाओं समेत वहां पहुंच गया और जयचन्द की सेना को ऐसा नीचा दिखाया कि वह बहुत ही लज्जित होकर कन्नौज

की ओर लौट गया और मनही मन में पृथ्वीराज से बदला लेने के उपाय सोचने लगा, कुछ दिनों के पीछे उस ने अपनी बेटी संयोग्यता के स्वयम्बर की तयारी करदी, इस में पृथ्वीज ने फिर दूसरी बार जयचन्द को लज्जित किया, और धीरे २ उस की शत्रुता ने भयानक रूप धारण किया और दिल्ली वा कन्नोज दोनों राज्योंको जलाकर भस्मी भूत कर दिया इतिहास के प्रेमी इन वृतान्तों को अच्छी तरह जानते हैं इस लिए हम इन का दुहराना व्यर्थ समझते हैं।

शशिव्रता दिल्ली आई सब से पहले वह इच्छन कुमारी से मिली फिर अपनी सास कमला देवी के पांव पड़ी, इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं कि इच्छन कुमारी और शशिव्रता बहनों की तरह रहती थीं, इन में न शत्रुता थी न ईर्षा द्वेष था, दोनों अपने पति की सेवा को अपना धर्म्म समझती थीं और इन्हों ने बहुत दिनों के लिए राजमहल को स्वर्ग धाम बना रक्खा था।

जहां इस स्वभाव की स्त्रियां हों वहां कभी सम्भव नहीं है कि पुरुष कायर और निकम्मे बन सकें, स्त्री की रुचि हमेशा पुरुषों की वीरता और निर्भयता का कारण हुआ करती है। पुरुष स्त्रियों के रूप और नेत्रों से वीरता अनुकरण किया करते हैं, आज जो बुरी दशा हमारी हो रही है, उस का विशेष कारण यही है कि अब हम में सच्ची स्त्रियां नहीं

रहा, और जब तक सच्ची स्त्रियां पैदा न होंगी तब तक सच्चे पुरुषों का पैदा होना सर्वथा असम्भव है।

ईश्वर आशीर्वाद करें कि फिर हम में उसी प्रकार की धार्म्मिका दृढ़ प्रतिज्ञ, और सुवीरा स्त्रियां उत्पन्न हों, और वह भारतवर्ष की भलाई की हेतु बनें।

७—भानुमती।

"प्रताप को न मारो, वह हिन्दुओं का सरदार, मेवाड़ का महाराना, जाति का आभूषण, और मनुष्यों का शिरोमणि है उस को हानि पहुंचाने का मन में विचार भी न करो, यह महा पाप है। इस का प्राश्चित नहीं होता, राजा का मारने वाला घोर नर्क में पड़ता है। उस की हड्डियां जङ्गल में पड़ी हुई सड़ती हैं कोई मनुष्य उस पापी का तर्पण नहीं करता"। यह शब्द एक गड़रिये की लड़की के मुख से निकले थे। जिस का वृत्तान्त हम अपने पाठकों को सुनाने लगे हैं। यह मवाड़ की रहने वाली थी, इसका बूढ़ा ससुर भेड़ बकरियां चराया कराता था उन्हीं पर उस के कुटम्ब का निर्वाह हुआ करता था।

हल्दी घाटी के युद्ध के पश्चात् हिन्दूपति महाराना प्रताप की दशा बहुत विचित्र हो गई थी। वह रात दिन जङ्गलों और पहाड़ों में छिपा फिरता था, हजारों सच्चे

---

*पहले इसका नाम भानी था, जब इस ने महाराना की सेवा की तो उसने प्रसन्न होकर इसका नाम भानुमती रख दिया था।

शूरमा क्षत्री उस के साथ रह कर काम आ चुके थे। मेवाड़ के सारे किले एक २ करके अकबर के हाथ जा चुके थे, और अकबर की फौज उसका इस प्रकार पीछा करती थी कि जैसे शिकारी कुत्ते हिरण अथवा व्याघ्र के पीछे भागते फिरते हैं। कष्ट पर कष्ट और आपत्ति पर आपत्ति उस के सिर पर आई, कई दिन और रातें लगातार जागते गुज़र जाती थीं और एक सूखी रोटी का टुकड़ा तक उस के मुख में न पड़ता था राना और रानी तथा उनके छोटे २ बच्चे और मेवाड़ के साथी राजपूत सब दुख और क्लेश सहन करते थे, परन्तु अकबर की आधीनता से सबको घृणा थी। "शरीर को एक न एक दिन मरना है मर जाय, आत्मा पर किसी का वश नहीं चलता" बांके राजपूत इस नियम पर चलते थे। राजस्थान के लेखक टाड साहब प्रताप के नन्हें २ बच्चों के क्लेश का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि ढालें इन राजकुमारों और कुमारियों के हिंडोले थे और तलवार की नोकें इनकी चन्मक थीं। वह टोकरों में रख कर वृक्षों की डालियों से बांधकर लटका दिए जाते थे। इनकी सेवा और रक्षा का काम करने वाला कोई नहीं था, केवल इने गिने शूरमा सरदार महाराना प्रताप जी के साथ रहते थे। शेर और भेड़ियों का इनको भय रहता था। दिन २ भर इन को आहार नहीं मिलता था। रानी की छाती दूध से रहित हो जाती थी

शत्रुओं के आक्रमण के समय वह बोरों में कस कर गुफाओं में बन्द कर दिये जाते थे। और जब शत्रु चले जाते थे तो उन को बाहर निकाल लिया जाता था। तीन सौ वर्ष से अधिक समय बीत चुका परन्तु यदि तुम आज भी मेवाड़ प्रान्त में जाओ तो वहां के पहाड़ी मनुष्य तुमको बता सकेंगे कि हिन्दूपति महाराना प्रताप ने यहां आकर पनाह ली थी। यह वह वृक्ष है जिनकी डालों में महाराना के बच्चे लटके रहा करते थे। इस प्रकार के दुःखों में भी अकबर की आधीनता से इन्कार करते रहना केवल महाराना प्रताप का ही काम था। उस वर्ण शंकरता के निकृष्ट काल में एक महाराना प्रताप ही ऐसा मनुष्य था कि जिस के माथे पर हिन्दूपन का तेज चमकता रहता था और शेष सब उस उत्पात की लहर में बह गए थे। महाराना सच्चा हिन्दू था सच्चा आत्मविश्वासी था। और केवल आज ही नहीं वरन् शताब्दियों तक हिन्दू बालक बालिकायें इस सच्चे हिन्दू का नाम ले लेकर नमस्कार करते रहेंगे। महाराना का सम्पूर्ण शरीर सिर से पांव तक घायल है, हड्डियों के सिवाय शरीर पर मांस का नाम नहीं है। न सिर पर छत्र है न मुकुट है। न शरीर पर राजसी वस्त्र हैं। मैले कुचैले वस्त्र पहने हैं, जो जगह २ पर फटे हुए हैं। यह उस सच्चे शूरमा और क्षत्री की अवस्था थी जो हिन्दुओं का सूर्य्य कहलाता था। और वह वास्तव में भी

सूर्य्य ही था, उस के मुख मण्डल में इस अवस्था में भी हिन्दूपन का तेज झलका करता था। योगियो! यह कठिन तप है। जिसकी शिक्षा महाराना प्रतापसिंह जी तुमको दे गए हैं। तपस्वियो! यह ऐसी कठिन तपस्या है कि जो मुशकिल से तुमको किसी तपी जन में दिखाई देगी वेदांतियो! यह असली और सच्ची तितिक्षा है प्रताप ने सब कुछ सहन किया परन्तु माथे पर बल न आने दिया।

जब वह बहुत लाचार होगया तो उसने अपनी प्रजा को आज्ञा दी कि मेवाड़ को उजाड़ हो जाने दो, यहां कोई मनुष्य न रहे। तुम सब लोग मेरे साथ पर्वत पर चलो वहां स्वाधीनता के साथ रहेंगे। जिस जङ्गल में उस समय प्रताप रहता था उस में यह आज्ञा सबको सुनाई गई। सबने उसकी आज्ञा सिर और नेत्रों से पालन की सब मेवाड़ के नगरों को छोड़कर पहाड़ की चोटियों पर जा रहे। प्रताप ने आज्ञा दी कि पहाड़ के नीचे कोई पशू भी चराने न आवे क्योंकि उन के पशू भी यवनों के हाथों में न जाने पावें। सब लोगों ने इस आज्ञा को भी स्वीकार किया परन्तु एक गडरिया ने इसका पालन नहीं किया वह पर्वत के नीचे तराई में अपनी भेड़ बकरियों को लेकर चराया करता था। इस अपराध के कारण महाराना के साथियों ने उसको मारकर एक वृक्ष से लटका दिया ताकि फिर किसी को महाराना की आज्ञा भंग करने का साहस न हो।

यह गडरिया बूढ़ा था, तीसरे दिन उसके दामाद मङ्गला ने भी इसी प्रकार की मुर्खता की, प्रताप के सरदारों ने उस को भी कैद किया और वध किये जाने की आज्ञा दी, यह बात चारों ओर तुरन्त फैलगई, सबको निश्चय होगया कि मङ्गला अवश्य मारा जायगा परन्तु सब चुप थे किसी में साहस नहीं था कि राना के विरुद्ध जिह्वा हिला सके, जिस समय यह वृत्तांत भानुमती ने सुना तो वह बहुत दुखित हुई और बड़ी देर तक रोती रही उसका भाई शेरा जिसकी आयु सत्तरह अठारह वर्ष की थी अपनी बहिन के विलाप को सहन न कर सका, पहले ही से उसको पिता के वृक्ष से लटकाये जाने का शोक था और इसी घात में था कि अवसर मिले तो पिता की लाश को उठालावें किन्तु मौका नहीं मिला था, जब उसने बहनोई के कैद होने की खबर सुनी और अपनी बहिन को रोते हुये देखा तो उसने कसम खाई कि मैं राना को मारे बिना कदापि न रहूंगा उसने अपनी बहिन से कहा तू धैर्य रख, मैं किसी न किसी प्रकार प्रताप के पास पहुंचकर उसका काम तमाम करूंगा, वह कभी मेरे हाथ से जीता न बचेगा।

भानुमती यद्यपि अनपढ़ थी, और धर्म्म कर्म्म में भी बहुत प्रवीण नहीं थी तथापि वह इतना अवश्य जानती थी कि राना जाति का सरदार है हिन्दुओं का मुकुट है श्री रामचन्द्र जी का दुनियां में प्रतिनिधि है, कहां तो वह पति

के शोक में आंसू वहा रही थी और कहां भाई की कसम सुनकर चुप होगई और आंखों से आंसू पोंछकर भाई से कहने लगी "शेरा ! राना के विषय में ऐसे शब्द मुखसे नहीं निकालने चाहियें, मैं चाहे विधवा होजाऊं परन्तु यह कभी उचित नहीं है कि कोई मनुष्य राना को हानि पहुंचावे, मेरे पति जैसे लाखों मनुष्य उस पर निवछावर हैं, मेरे शरीर की खाल उतारकर यदि उसके पांवकी जूतियां बनाई जावें तो भी मैं सहन कर लूंगी, परन्तु राना पर कभी जान बूझ कर आंच न आने दूंगी, क्या तू नहीं जानता कि महाराना प्रताप मेवाड़देश और सम्पूण भारतवर्ष तथा हिन्दू जाति का सिरताज है।

शेरा बोला चाहे कुछही क्यों न हो मैं परसों किसी न किसी प्रकार अवश्य प्रताप को अपने तीर का निशाना बनाऊंगा, मैं जानता हूं वह किसी जगह छिपा हुआ रहता है मैं जानता हूं वह कव और कहां से गुज़रता है। उसने मेरे पिता को वध कराया उसकी लोथ भी मुझको नहीं मिली अव वह मेरे बहनोई का भी वध करवाना चाहता है। मैं उस का अवश्य वध करूंगा। परसों दोपहर के समय अवश्य उस का काम तमाम करूंगा। अकवर को प्रताप के कैद करवाने में अकृत कार्यता हुई क्योंकि वह गैर जगह का रहने वाला है परन्तु मैं पहाड़ी के कोने २ से अवगत हूं। मुझ को बिना उस के मारे हुये चैन नहीं आवेगा।

भानुमती ने भाई को बहुत समझाया परन्तु वह ज़िद्दी था, अपने वचन से नहीं हटा। उस ने कहा चाहे मुझको संसार पापी राजद्रोही क्यों न कहे परन्तु मैं प्रताप को मार कर चैन लूंगा। भानुमती अपने भाई के क्रूर स्वभाव को जानती थी इसलिये चुप हो रही उससे कुछ नहीं बोली परन्तु अपने मन में ठान लिया कि चाहे जो कुछ हो प्रताप को हानि न पहुंचने पावे। शेरा अपने तीर कमान लेकर उसी समय पहाड़ी की ओर चल पड़ा जिधर महाराना रहता था, जिस गांव में शेरा रहता था वहां से राना का निवास स्थान दो मंज़िल के फासले पर था।

भानुमती अपने जी में डर गई कि कहीं एसा न हो कि अचानक धोके से महाराना प्रताप उस के भाई के हाथ से मारा जाय, वह परले दर्जे की राज भक्त स्त्री थी वह अपने दुःख क्लेश भूल गई और इस चिन्ता में प्रवृत्त हुई कि प्रताप के प्राण की रक्षा करे, उस ने अपने छोटे भाई से यह वृत्तांत वर्णन किया उसने वहिन का कहना मान लिया और एक राजपूत से जो उस का मित्र था दो घोड़े मांगने गया गरीव गड़रिये को घोड़े कौन देने लगा था, राजपूत ने घोड़े नहीं दिए भाई ने अपनी वहन को घोड़ा न पाने का हाल कह सुनाया तव वहिन ने प्रेरणा की कि समय वहुत थोड़ा है जिस प्रकार से हो सके घोड़े लाने चाहिये। भाई ने वैसा ही किया, रात के समय जव सव सो रहे थे तो राजपूत

के घोड़े खोल लाया भानुमती ने तुरन्त मरदाना भेष बना लिया। और अपने भाई रतन के साथ घोड़े पर सवार हुई और रात के समय वहां से चल पड़ी। कदाचित हमारे पाठकों के मन में भ्रम हो कि गडरिये की लड़की घोड़े पर चढ़ना क्या जानती रही होगी, परन्तु उनको विदित रहे कि उस समय भारत वर्ष की दशा और प्रकार की थी, विशेष कर मेवाड़ प्रांत की नीच जातियों तक की स्त्रियों को भी घोड़े की सवारी और हथियार चलाना आता था।

दोनों भाई बहिन नदी नाले नांघते हुए चल पड़े, रात बहुत अंधेरी नहीं थीं, तारे चमक रहे थे, दोनों भाई बहिन तेज़ी के साथ जा रहे थे, भानुमती ने कहा भाई रतन! यदि मार्ग में कोई दुर्घटना हो जाय तो तुम मेरी चिन्ता न करना तुम सीधे महाराना के पास पहुंच कर उसे शेरा की दुष्टता से सचेत कर देना, जब राजा की जान का भय हो तो सच्चे हिन्दू अपने प्राणों का भय नहीं करते।

रतन ने कहा "ईश्वर तेरी रक्षा करे, मुझ से जो कुछ हो सकेगा उसमें कोई नाहीं न करूंगा, केवल इस बात की चिन्ता है कि कहीं शेरा हम से पहले न पहुंच जाय।

भानुमती बोली "हां संदेह तो अवश्य है क्योंकि वह हमसे एक दिन पहले चल चुका था। तथापि हमारे पास घोड़े हैं, मुझको आशा है कि मैं उससे पहले वहां पहुंच जाऊंगी, भाई रतन मुझको रानी पद्ममावती के दर्शनों की

भी बड़ी इच्छा है, मैं उसको देखकर प्रसन्न हूंगी और कौन जाने महारानी हमारी सहायता कर सके"।

रतन ने कहा "ईश्वर सबकुछ कर सकता है, देखो क्या होता है" इस प्रकार बात चीत करते हुए दोनों कई कोस निकल गये, संयोग से आकाश पर काली घटा छागई और दम के दम में पानी बरसना आरम्भ हुआ, घटाटोप अन्धकार होगया, हाथ को हाथ नहीं सूझता था दोनों निराश होगये उनका साहस जाता रहा, वह बोले परमात्मा! तू राना की रक्षा करना, दोनों एक चौरी के नीचे ठहर गये, परन्तु उनको एक २ क्षण एक २ वर्ष के समान बीतता था, बेचारों को कुछ पेश नहीं जाती थी, उस चौरी के समीप एक मन्दिर भी था भानुमती ने सुना कोई गाने वाला एक सुहावना गीत गा रहा है।

सङ्गीत—रात अन्धेरी चमकत बिजली।
पिय बिन कुछ न सुहावे॥
धीरज केहि बिधि धारूं सजनी।
बिरहा जोर सतावे॥
बिलपत हंसत रोय दुख पावत।
तन मन जरत शरीरा॥
माधो तुम बिन कल न पड़े मोहि।
पावे खेद अधीरा॥

निशि दिन बसत हिये मन्दिर बिच।
मूरत श्याम तुम्हारी॥
पांव पड़ो सुधि लेहु सांवरो।
तन मन तुम पर वारी॥

भानुमती ने समझा प्रभात होने वाली है इस लिये कोई हरिभक्त ईश्वर का भजन कर रहा है, उसने अपने भाई से कहा, भाई रतन उठो देर हो रही है राना का ध्यान करो, समय कम है देखें परमात्मा क्या करते हैं। दोनों फिर सवार हुए; घोड़ों को सरपट छोड़ दिया वह भी वायुवेग से उड़ चले ऐसा प्रतीत होता था, मानों वह उनकी बातें समझ रहे हैं! पानी बरस रहा है, वायु सन-सन चल रही है, थोड़ी देर में प्रभात का तारा प्रगट हुआ सूर्य्य आंखों के सामने था। यह एक गांव के पास से गुजरे, इन को देख कर कुत्ते भौंकने लगे परन्तु इनको कहां फुरसत थी कि उनकी ओर ध्यान देते।

दोनों के मन में तरह २ के विचार उत्पन्न हो रहे थे और शीघ्रता के साथ चले जा रहे थे किन्तु बादल चुप था वह आकाश पाताल को एक कर रहा था, भानुमती थोड़ी देर के लिये अपने विचार में इतनी मस्त होगई कि उस को अपने तन मन की कुछ सुध नहीं रही। इसी अवस्था में उस का घोड़ा एक वृक्ष के पास से होकर गुज़रा, उस की डाल के साथ लड़की का सिर ज़ोर के

साथ टकराया, घोड़ा वहां खड़ा होगया रतन कुछ दूर आगे निकल गया था, परन्तु वह भी लौट आया, भानुमती के सिर में चक्कर आने लगा, सिर से रुधिर वह रहा था, उस ने कहा भाई रतन ! मेरे बड़ी चोट लगी किन्तु कुछ परवाह नहीं तुम घाव को कसकर बांध दो अन्यथा अब मुझमें चलने की सामर्थ्य न रहेगी। देखूं महाराना तक किस प्रकार पहुंचती हूं, रतन ने बहिन को धैर्य्य दिया और अपनी पगड़ी फाड़ घाव को बांध दिया और दोनों फिर चल पड़े।

घोड़े फिर तेज़ी से दौड़ने लगे और उसी प्रकार दौड़ते हुए उस पहाड़ के समीप पहुंचे जिसमें राना प्रताप रहता था। सिपाहियों ने इनको आगे बढ़ने से रोका, भानुमती बोली तुम मत डरो हमारे पास हथियार नहीं हैं राना के प्राणों का भय है हमको तुरन्त उसके पास पहुंचा दो हम उसको भेद बतायेंगे।

भानुमती बहुत दुर्बल थी उसको सिपाहियों के साथ ज़ोर से बात चीत करनी पड़ी, उसके सिर से रक्त बहुत सा निकल चुका था इस लिए वह मुर्छित हो गई और उस का सिर लटक पड़ा। रतन और सिपाहियों ने उसको घोड़े पर से नीचे उतारा और राना के पास ले जाने का इरादा किया।

राना के दूत कोसों तक बिखरे हुए थे, और क्षण २ की खबर उसको पहुंचाया करते थे, जिस समय उसने सिपाहियों के द्वारा भानुमती की बातें सुनीं तो उसने आज्ञा दी कि उन दोनों को मेरे सामने लावो।

रतन और भानुमती दोनों पेश किये गये, रतन ने झुक कर राना को प्रणाम किया, भानुमती बेसुध थी ज्वर का वेग बढ़ रहा था। सिर के बाल बिखरे हुए थे, मुख से झाग (फेन) बह रहा था, बेसुधी की दशा में उसके मुख से यह शब्द निकल रहे थे "राना को न मारो, राजद्रोह बुरा है, मैं विधवा रहूंगी मुझको विधवा रहना पसन्द है परन्तु राना का वध होना पसन्द नहीं है, मेरे भाई ऐसा पाप न कर, कुछ परवाह नहीं यदि राना ने पिता को वध करा दिया और अब तुम्हारे बहनोई को बध कराने वाला है। हम उस की प्रजा हैं, हमारा जीवन उसीके लिये है, तू राना पर कभी हाथ न उठाना। राना हिन्दू जाति कद सूर्य्य है, हिन्दू धर्म्म का रक्षक है" इतना कह कर भानुमती चुप होगई, महाराना उस की वज़ा कता को देखता और सोचता रहा, थोड़ी देर में उस ने फिर अपना मुख खोला और बोली भाई रतन चलो दो घोड़े चुरालाओ जल्द राना को खबर दो, हम दानों चल कर राना को बतादें कि शेरा तुम्हारी घात में बैठा है, चलो देर न करो'। इतना कह कर वह फिर चुप होगई।

प्रताप ने समझा इस बात में जरूर कुछ न कुछ भेद है, उसने रतन को सम्बोधन करके कहा "तू कौन है और यह लड़की कौन है, और मुझ से यह क्या कहना चाहती है? रतन ने सब हाल, साफ २ कह दिया। राना उसके सत्यासत्यके होने पर विचारने लगा। इतने में भानुमतीने तीसरी बार फिर अपना मुख खोला "रतन ! मैं महारानी पद्मावतीको देखूंगी वह हमारी माता है मेरे धन्य भाग्य हैं कि मुझको राजमाता के दर्शन प्राप्त होंगे और मुझे आशा है कि वह मेरी सहायता करेगी, इतना कह कर वह फिर चुप हो गई और उस की जिह्वा बन्द होगई राना ने वैद्यराज को आज्ञा दी कि उसका इलाज करे और उस को महारानी पद्मावतीके खेमे में स्थान दिया गया, उसका घाव और रक्त धोकर दवाई लगाई गई।

उसी दिन दोपहर के समय राना के सन्मुख एक मनुष्य पेश किया गया जो तीर कमान लिये हुए एक जगह पहाड़ी में छिपा हुआ था राना ने उसको पहरे में रक्खे जाने की आज्ञा दी।

दूसरे दिन भानुमती की दशा अच्छी हुई उस ने अपनी आंखें खोलीं, और दोचार सुन्दर स्त्रीयों और बच्चों को अपने इर्द गिर्द देख कर विस्मित हुई, और पूछने लगी मैं कहां हूं और आप लोग कौन हैं?

एक स्त्री ने मुस्करा कर कहा तू पहाड़ में है और रानी पद्मावती तेरे सामने बैठी है। रानी का नाम सुनना था कि वह हड़ बड़ा कर उठ खड़ी हुई और पद्मावती के चरणों में अपना सिर रख कर बोली "माता मुझको जल्दी राना जीके पास ले चलो मैं उन से कुछ कहना चाहती हूं।

रानी बोली पुत्री जो कुछ तू कहना चाहती है वह सब कुछ महाराना ने सुन लिया है, उन्हों ने तेरे पति का अपराध क्षमा करनेका वचन दिया है, तू धैर्य्य रख तेरा पति तुझको मिल जायगा।

रानी की बातें सुनकर भानुमती को बड़ी शान्ति मिली और रानी के चरण छूकर अपनी कृतज्ञता का प्रकाश किया। जब भानुमती नहा धो चुकी और खाने पीने से छुट्टी पाचुकी तो उस को महाराना के सन्मुख हाज़िर होने का अवसर दिया गया। शेरा, मंगला, और रतन यह तीनों भी हाज़िर थे, शेरा के हाथ पांव बंधे थे बाकी और सब के खुले हुए थे।

भानुमती सामने आई, महाराना के चेहरे से राजसी तेज बरस रहा था उसने लड़की को बोलने का अवसर नहीं दिया। अपने आप कहने लगा "लड़की मैं तेरी राज भक्ति को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ हूं। जिस राजा की प्रजा उस को इतना प्यार करती हो उसके राज्य को कभी हानि नहीं पहुंच सक्ती, मैंने तेरे पति के अपराध

को क्षमा किया इस के अतिरिक्त तू जो और मांगेगी मैं उसके देने के लिये तैयार हूं मांग क्या मांगती है ?"

महाराना का तेज और ऐश्वर्य्य देख कर लड़की सकुच (सहम) गई उसके मुख से केवल यह शब्द निकले "भाई की ज़िन्दगी और पिता की लोथ (लाश)"

राना ने कहा लड़की मैंने तेरी प्रार्थना स्वीकार की, और उसी क्षण सिपाहियों को आज्ञा दी कि शेरा की मुश्कें खोल दो, और गडरिये की लाश इसको सौंप दो। राजपूत सरदारों ने शेरा के विरुद्ध कुछ कहना चाहा परन्तु राना ने नहीं सुना, उसने कहा बूढ़ा आज्ञा भंग के अपराध में दण्ड पाचुका, जिस घर में भानुमती जैसी कन्या है उस घर से मुझे कोई हानि नहीं पहुंच सक्ती। मेवाड़ मुझ को प्यार करता है और अब मैंने सिन्ध की ओर जाने का इरादा त्याग दिया। मैं जीते जी मेवाड़ के लिये लड़ता रहूंगा, मेरा जीना मरना सब मेवाड़ के लिये है"

अभी महाराना के वचन समाप्त नहीं होने पाये थे कि भामाशाह जैनी मेवाड़ का पुराना दीवान दरबार में हाज़िर किया गया, यह कई पीढ़ी से मेवाड़ का महामंत्री था। उसने तीन बार झुक कर प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर बोला पृथ्वीनाथ! हिन्दुओं के सूर्य्य!! मेवाड़ को आप की जुदाई बरदाश्त करने की शक्ति नहीं, मेरे

बाप दादाओंने बहुत सा धन एकत्र किया है और वह इतना है कि आप बारहवर्ष तक यथेष्ट सेना लेकर शत्रुओंसे लड़ते रह सकते हैं। यह आप के चरणों पर निछावर है मेवाड़ की आप से अन्तिम प्रार्थना यह है कि एक बार कम से कम प्यारे मेवाड़ के लिये, और उद्योग (कोशश) कर देखिये, आप की और प्रजा भी तन मन धन से हाज़िर है। महारानाने मुस्करा कर कहा सच मुच ईश्वर की इच्छा ऐसी ही है, उसने भानुमती को रुपया पैसा देकर प्रसन्न किया और जिस गांव में वह रहती थी वह गांव भी उसे पुरस्कार में देदिया रतन शेरा, और मंगला की सेनामें भरती होने की आज्ञा देदी, अकबरी सेना जो महाराना का पीछा कर रही थी, वह रंग रलियां मना रही थी उसे क्या पता था कि महाराना की शक्ति बढ़रही है, भामाशाह की सहायता और मेवाड़ी नवयुवकों की नई सेना लेकर वह अकबर की सेना पर टूट पड़ा और गाजर मूली की तरह काटकर फेंक दिया। सब जगह यवनों की लाशों के ढेर लग गये, एक यवन भी जीवित न बचा, महाराना ने उसी साल के भीतर २ सारा मेवाड़ अपने अधिकार में कर लिया और यवनों को वहां से मार कर निकाल दिया, केवल चित्तौड़ और अजमेर पर अकबर अपना अधिकार जमाए रहा।

८—चन्द्र कला।

राजा गज मारवाड़ का राजा था, उसने अपने बूड़े पुत्र उमरावसिंह को प्रजा की अप्रसन्नता के कारण देश अच्युत (जलावतन) कर दिया उमरावसिंह ने शाहजहां वादशाह के दरवार में पनाह ली। उमरावसिंह के वहुत से राजपूत साथी भी दिल्ली चले आए थे, कुछ काल के पश्चात् उमरावसिंह की वादशाह के साथ अन वन हो गई, और उस वहादुर जत्थे ने जिस प्रकार अपने सरदार के साथ लड़कर वीरता के साथ अपने आप को वलि कर दिया वह सारा संसार जानता है। और राजिस्थान के इतिहास में ऐसे तेजोमय शब्दों में वर्णन किया गया है कि जिस की प्रशंसा नहीं हो सकती।

उमरावसिंह के सारे साथी मर गए केवल गङ्गासिंह नामी एक राजपूत वाकी रह गया, जो किसी विशेष कारण से दिल्ली में नहीं था। इस लिए मरते समय उसने अपने सरदार का साथ नहीं दिया। वह दिल्ली में राजपूतों के महल्ला में आकर रहने लगा, इसमें राजपूतों के सब गुण थे केवल एक दोष यह था कि वह सुख-

माशीलता के जीवन को अधिक प्रिय समझता था, और इसी दोष ने उसको अपस्वार्थी बना दिया था।

गङ्गासिंह का विवाह रामसिंह नामक एक शूरमा क्षत्री की कन्या के साथ हुआ था। जिसका नाम चन्द्र कला था। यह लड़की बहुत रूपवान थी, और अपने पिता की इकलौती पुत्री थी। गङ्गासिंह ने समझा था कि उसके साथ विवाह कर लेने से बहुत कुछ धन पदार्थ हाथ आवेगा और उसका जीवन आराम से व्यतीत होगा। परन्तु विवाह करने के पश्चात् ही उसको अपनी भूल प्रतीत होगई। राम सिंह साधारण स्थिति का मनुष्य निकला, और उसने अपनी पुत्री को दहेज़ में बहुत थोड़ा धन दिया इस लिये गङ्गासिंह की आशा पर पानी फिर गया।

परन्तु चन्द्रकला रूपवती स्त्री होने के अतिरिक्त धार्म्मिका, पतिव्रता, और सुसभ्य थी उसने अपने प्रेम और सेवा से गङ्गासिंह को अपना वशीभूत बना लिया और कई वर्ष तक वह उसके साथ बड़ी प्रीति रखता रहा।

विवाह हुए दस वर्ष बीत गए, चन्द्रकला के पेट से पांच लड़के उत्पन्न हुए, जिनकी रक्षा शिक्षा और पालना का काम वह स्वयम करती थी। इस काल में चन्द्रकला के रूप में भी कमी आगई। गङ्गासिंह परिश्रमी और समय

को पहचानने वाला नहीं था इस लिए उसने अपना सारा धन नष्ट कर दिया, उसके घर में कुछ नहीं रह गया था। परन्तु अपनी टेंव के अनुसार उसी प्रकार सैर शिकार और इष्ट मित्रों के साथ घूमा करता था। उसने कभी स्वप्न में भी यह विचार नहीं किया कि उसके घर में धन नहीं है। घर का काम काज बराबर उसी प्रकार चलता रहा।

गङ्गासिंह बहुधा घर में नहीं रहता था। उसकी स्त्री ने अनेकबार उस से काम काज करने और घर का काम सम्भालने की सम्मति दी। परन्तु न तो उसने काम काज किया और न अपनी सम्पत्ति की ओर विचार किया और न अपनी स्त्री की पूछ की कि घर का काम काज किस प्रकार से चलता है। वह बराबर सुखमाशीलता के जीवन में लगा रहा। चन्द्रकला उसके लिए अच्छे से अच्छे कपड़े बनवा देती और आप फटे पुराने कपड़े पहने रहती थी। लड़कों की भी अवस्था इतनी अच्छी नहीं थी पर उस आलसी मनुष्य की आंखें नहीं खुलीं। और वह हमेशा अपस्वार्थी बना रहा, चन्द्रकला को गङ्गासिंह की ओर से केवल इतनी शान्ति थी कि उसने अपनी और कुक्रियाओं के साथ अपने आपको व्यभिचारी नहीं बनने दिया था जिस को स्त्रियां बहुत घृणा की दृष्टि से देखती हैं। उसके मन में इतनी बात का शोच अवश्य रहता था कि उसका पति न

तो लड़कों का कुछ खयाल करता है और न स्त्री का ही ध्यान रखता है। यह बात बहुत ही अनुचित थी परन्तु क्या करती धैर्य्य के साथ सब कुछ सहन करती थी रात दिन पति की प्रसन्नता का ध्यान रखती थी।

एक दिन जब गङ्गासिंह बाहर जाने को उद्यत हुआ और उसको रुपयों की नितान्त आवश्यकता हुई तो अपनी स्त्री से रुपये देने को कहा। रुपये घर में कहां रक्खे थे? परन्तु चन्द्रकला ने किसी न किसी प्रकार कुछ रुपये ला दिये और उसको देकर कहने लगी आप इनको खर्च करें और शोच को हृदय में स्थान न दें।

गङ्गासिंह ने हंसकर कहा मालूम होता है तू अपने पिता राम सिंह जी से रुपये लाई है।

चन्द्रकला—बोली हां मेरे पिता जी ने दिए हैं।

गङ्गासिंह—वह प्रायः तुम को देते रहते होंगे?

चन्द्रकला—माता पिता के सिवाय और कौन सन्तान की फिकर करता है।

गङ्गासिंह—मैंने भूल की, मैं चिरकाल से तेरे पिता के पास नहीं गया, अब मैं उनके पास जाकर कृतज्ञता का प्रकाश करूंगा।

चन्द्रकला—वह इस बात से बहुत प्रसन्न होंगे। इस के सिवाय पिता हमेशा ही अपने पुत्र पुत्रियों को दिया ही करते हैं इसके लिये कोई उनका उपकार नहीं मानता।

इसका आप किसी से ज़िकर न करें इसको लेवें और अपना काम करें । यदि कुछ और आवश्यकता हो तो वह भी बतावें मैं उसको भी प्रस्तुत करूं।

गङ्गासिंह इतना अपस्वार्थी बन गया था कि उसने अधिक पूछना उचित नहीं समझा । रुपयों को लेकर अपनी आदत के अनुसार सैर व शिकार के इरादे से बाहर निकला।

चन्द्रकला घर में अकेली रह गई वह कभी पति की निष्ठुरता पर आंसू बहाती, कभी अपने पिछले जन्म के कर्म्मों का फल समझ कर चुप हो जाती, परन्तु उसकी स्वास्थ्य दिन प्रति दिन बिगड़ती गई । रूप रंग भी बदल चला तो भी रात दिन घर के काम धन्धों में लगी रहती थी । लड़कों का पालना सहज काम नहीं है । बेचारी सब कुछ करती थी । घर में दो दासियां थीं वह उसके स्वभाव के अनुकूल थीं, उनको भी इसके साथ बड़ा प्रेम था। यह भी जिस प्रकार से होता था उस की किसी आज्ञा का भंग नहीं करती थीं।

गङ्गासिंह के घर में कुछ भी नहीं रह गया था परन्तु घर की बाहरी दशा में किंचित फर्क नहीं आने पाया था । और विशेष कर जब गङ्गासिंह घर में होता था तो खान पानादि की सामग्री सब उसी प्रकार की उत्तम होती थी जैसे किसी धनवान मनुष्य के घर में हुआ करती है। यहां

पर पाठकों के मन में प्रश्न उत्पन्न होगा कि यह सब धन कहां से आता था ? रामसिंह ने अपनी कन्या को कभी सहायता नहीं दी । उस ने अन्तिमबार बात चीत करते समय अपने पिता के नाम से असली हाल को छिपाया था बात यह थी कि वह और उसकी दोनों बांदियां रात के समय चरखा काता करती थीं और बाज़ार में सूत बेच कर उस के मूल्य से गुज़ारा किया करती थीं । उस समय हिन्दू घरानों में भी सूत कातने का रिवाज था और साधारण मनुष्य अपने घरों के कांते हुए सूत के कपड़े पहनते थे । उस से अच्छी आमदनी होती थी । परन्तु वह बहुत मितव्यता (किफायत) से रहती थी । यही उस के निर्वाह का उपाय था ।

गङ्गासिंह कुछ काल के पश्चात् घर लौट कर आया और अपनी स्त्री तथा बच्चों के साथ कई दिन रहा । फिर उस का जी उचट गया, और चन्द्रकला से कहने लगा मेरी स्वास्थ्य अच्छी नहीं है, मैं फिर बाहर जाऊंगा ।

चन्द्रकला—जो आप के जी में आवे सो करें आप को क्या कभी मेरी फिकर होती है ?

गङ्गासिंह—तू तो भली चंगी है मैं तेरे लिए क्या फ़िकर करूं ।

चन्द्रकला—यह सत्य है, परन्तु इन लड़कों की तो तुम को चिन्ता करनी चाहिये ।

गङ्गासिंह—तू किस लिये है ? लड़कों की पालना पिता नहीं किया करता माता करती है।

चन्द्रकला चुप होगई उस ने फिर कोई बात नहीं कही। और गङ्गासिंह फिर सैर व शिकार के लिए चला गया। यह सैर व शिकार की आदत उस ने उमरावसिंह से सीखी थी। इस में वह कुछ राजपूती शोभा समझता था।

जब शिकार से उस का जी उक्ता गया तो वह फिर अपने घर पर लौट कर आया और दिल्ली में रहने लगा। इस बार उस ने अपने मित्रों से सुना कि चन्द्रकला रात को चरखा कात कर बाज़ार में सूत बिकवाती है। इतना सुनना था कि वह आग बगोला होगया। चरखा कात कर बाजार में सूत बिकवाना वह अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझता था। अपने मित्रों के पास से उठ कर वह घर पर आया उस की आंखें क्रोध से लाल पीली हो रही थीं। लड़के उस की सूरत देखकर सहम गए। बांदियां समझ गईं कि कुछ दाल में काला अवश्य है। वह अपनी स्त्री के कमरे में गया, और उससे कहने लगा तूने मेरी इज़्ज़त ख़ाक में मिलादी। आज तक किसी राजपूतनी ने ऐसा काम नहीं किया था।

चन्द्रकला बोली मैंने ऐसा कौन सा काम किया है कि जिसको तुम इतना बुरा समझते हो?" इतना कहा और लज्जा से अपनी गर्दन नीची करली।

गङ्गासिंह—कमवख्त ! तू मुझसे पूछती है कि तूने ऐसा कौन सा काम किया है, कि जिसको मैं अनुचित समझता हूं ? क्या तू स्वयम नहीं जानती कि आज सारी दिल्ली में इस वात का चरचा हो रहा है कि गङ्गासिंह के घर में सूत का व्योहार हो रहा है और चन्द्रकला चरखा कातकर सूत वेचती है ?"।

चन्द्रकला—यह वात तो सत्य है।

गङ्गासिंह—स्वीकार करती है कि यह सत्य है ?

चन्द्रकला—हां मैं स्वीकार करती हूं कि सत्य है।

गङ्गासिंह—और तू दाम लेकर वेचती है ?

चन्द्रकला—हां मैं दाम लेकर, सूत को दाम लेकर बिकवाती हूं।

गङ्गासिंह—भला तू ऐसा क्यों करती है ?

चन्द्रकला—केवल आपके लिये।

गङ्गासिंह—तो क्या मैंने तुझसे जो रुपये लिये थे वह सूत के दाम थे।

चन्द्रकला—जी हां, मैंने जो रुपये आपको दिये थे वह सूत के दाम थे।

गङ्गासिंह—तूने मेरी आवरू को मिट्टी में मिला दिया। ज़रा भी मेरा लिहाज नहीं किया। मैं आज तेरे चरखे और सूत को आग लगा दूंगा । मैं कदापि तेरे इस अपराध को

क्षमा न करूंगा । भला मैं अब राजपूतों को मुख कैसे दिख-लाऊंगा तूने मेरी नाक कटवादी ।

चन्द्रकला वहुत गम्भीर स्त्री थी, अपने मन को वश में रखने की शक्ति उस में वहुत थी। जव से वह गङ्गासिंह के घर में व्याह कर आई थी कभी गङ्गासिंह को उत्तर नहीं दिया था, हमेशा आंख नीचे करके उसको सुन लिया करती थी। इस वार उसको अनुचित प्रतीत हुआ उस ने सिर उठा कर कहा "मैंने यह सव काम तुम्हारे लिये किये हैं। मुझको आप के घर में आए हुये आज दस वर्ष हुये हैं तुम ने कौन सा धन मुझे सौंपा था । दो चार सौ रुपया कव तक चलते हैं, लड़कों को भूखा देखकर तुमको व्याकुलता में पाकर मैंने यह काम स्वीकार किया था, तुम ने किंचित् भी मेरा ध्यान न किया और न लड़कों की सुधली । भला वताओ तो सही यदि मैं ऐसा न करती तो क्या करती ? खैर जो कुछ होने को था हो चुका अब तुम अपना घरवार संभाल लो मैं वीमार हूं मृत्यु मेरे जीवन को समाप्त करने वाली है।

इतना कहकर वह पति के पास से चली गई। गङ्गासिंह विस्मित रह गया क्या सचमुच वही चन्द्रकला है जो पहले स्वभाव की वहुत नम्र थी ? वह हक्का वक्का हो गया और वैठक में चला आया। उस दिन गङ्गासिंह के घर में भोजन नहीं वना, सब भूखे सो रहे, प्रातःकाल गङ्गासिंह बच्चों

के रोने का शब्द सुन कर घर में गया। एक लड़का हिंडोले में पड़ा रो रहा था, दूसरे भूमि पर पड़े हुए माई माई पुकार रहे थे परन्तु माई कहां थी। हा! यह क्या हो गया क्या चन्द्रकला ने आत्मघात कर लिया। अथवा कहीं चली गई?

उस ने बांदियों से पूछा, परन्तु किसी ने कुछ पता न दिया। गङ्गासिंह के ऊपर शोक का पहाड़ टूट पड़ा और आंखों से आंसू बहने लगे वह रोता हुआ रामसिंह के घर पर गया और पूछा कि यहां चन्द्रकला आई है या नहीं? उस ने कहा यहां वह नहीं है और वह भी अपनी बेटी के गुम हो जाने में बहुत दुखी हुआ।

वह फिर अपने घर पर आया और पास पड़ोस वालों से पूछने लगा दो एक राजपूतनी स्त्रियों ने बताया कि वह अमुक मार्ग की ओर जा रही थी। यह सुन कर गङ्गासिंह भी उसी मार्ग की ओर भागा, चन्द्रकला के अन्तिम शब्द उस के हृदय में तीर की तरह चुभ रहे थे "मैंने सब कुछ तुम्हारे लिए किया, दस वर्ष हुए घर में आई, दो चार सौ रुपया कब तक चल सकते हैं। लड़के भूखे थे, तुम परेशानी में थे, तुम को किसी की फिकर नहीं थी, यदि मैं सूत न कातती तो क्या करती, मैं बीमार हूं, मौत मेरी ज़िन्दगी का फैसला कर रही है इत्यादि २।

उसकी आंखों के आगे दुनियां अन्धेर होगई, उस ने अपनी भूल स्वीकार की, उस के सिर पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा, वह पछताने लगा, निदान सच्चा राजपूत था अपने आप को लानत मलानत करने लगा। और फिर रोता पीटता हुआ दौड़ा और कहने लगा कि यदि अब की वार तू मुझ को मिल जाय तो मैं ऐसी भूल न करूंगा। मैंने तेरी कदर नहीं की।

इसी प्रकार कहते हुए वह कई मील चला गया। राह में आदमियों से पूछता जाता था और उन के कहने पर कि हां आगे एक स्त्री जा रही है वह मिलने की आशा किए हुए दौड़ा चला जा रहा था।

कई घण्टे बीत गये। जब दिल्ली से पश्चिम कई कोस बाहर निकल आया तो एक तालाब की ओर दृष्टि गई और उस ने तुरन्त चिल्लाकर कहा मैंने पालिया यह मेरी ही चन्द्र-कला है और इस प्रकार कहता हुआ वह झपटकर उसकी ओर गया चन्द्रकला वृक्ष के नीचे बैठी हुई अपने कपड़े कस कर बांध रही थी ताकि डूबने पर मरने के पश्चात् उसकी लोथ नंगी न होजाय। गङ्गासिंह ने उस के हाथ पकड़ लिए। दोनों का मिलाप महा विचित्र था।

चन्द्रकला ने इस अवस्था में भी पति से मिन्नत खुशा-मद नहीं करवाई उसने आप ही गङ्गासिंह से कहा चलो घर चलें वह लड़के दुखी हो रहे होंगे।

गङ्गासिंह ने कहा, देवी ! तू धन्य है साक्षात् लक्ष्मी है, मैंने महा पाप किया, मैं अज्ञान था, मेरी आंखें वन्द थीं । इसकारण से मुझसे अपराध हुआ तू मुझको क्षमा करदे ।

चन्द्रकला ने आंसू पोंछ कर उत्तर दिया क्षमा करने की क्या बात है । तुम मेरे स्वामी हो, मैं तुम्हारी दासी हूं, मेरी केवल इतनी ही इच्छा है कि तुम सुखी रहो, और इसी कारण से मैं मन, वचन, कर्म्म से तुम्हारे हित के लिए काम करती रही । तुम सचमुच मुझ को प्यार करते हो और मुझ को इस से अधिक और किसी वात की अभिलाषा नहीं है"।

दोनों संध्या के समय घर आए । रामसिंह बच्चों को लिए हुए इनकी मार्ग देख रहा था, इनको देखते ही सबके सब प्रसन्न हो गए और फिर खुशीके साथ रहने सहनेलगे ।

इस वात के कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस घटना के पश्चात् गङ्गासिंह का स्वभाव पूर्णतः बदल गया, उस के घर में चरखा कातना वन्द होगया, उस को स्वयम अपने घर का ध्यान रहने लगा और चन्द्रकला के दिन सुख से व्यतीत होने लगे ।

१--मृगनयनी।

मृगनयनी अपने समय की अत्यन्त सुन्दर स्त्री थी उसका स्वभाव साधुओं का सा था। उस का जीवन बहुत सादा था, सुन्दरता में अद्वितीय थी, उस के नेत्र हिरन के से सुन्दर थे, इसी कारण उस का नाम मृगनयनी प्रसिद्ध था। यह गुजरात के किसी राज घराने की थी और ग्वालियर के तोमर वंस वाले महाराजा मानसिंह को विवाही थी। कहते हैं कि इस देवी में कुछ इस प्रकार की खूबियां कूट २ कर भरी हुई थीं कि जो साधारण मनुष्यों में प्रायः नहीं देखी जातीं एक ओर यदि वह ईश्वर की भक्त थी, तो दूसरी ओर संसार के काम काजों को समझने की भी अच्छी योग्यता रखती थी जिस समय वह हथियार बांध कर घोड़े की पीठ पर बैठती थी तो यह प्रतीत होता था कि मानो एक मनोहर चित्र है। तीरंदाजी में अद्वितीय समझी जाती थी, तलवार चलाने में यह हाल था कि बड़े २ शूरवीर इस का लोहा मानते थे। पतिभक्त और पति परायण थी। मानसिंह इसको अपनी आंखों का तारा समझता था सेना के सिपाही इस की वीरता और साहस पर बलिहार थे। अनेक वार उसने संग्राम भूमि में वीरताका परिचय दिया था। मानसिंह यद्यपि बड़ा

लड़ाका और योधा था, तथापि उसकी सेना के परिचालन का काम मृगनयनी के हाथों में रहा करता था। यह स्त्री सम्राट अकबर के समय हुई है। वह समय बड़ा ही टेढ़ा और विलक्षण था। अकबर ने प्रायः सब हिन्दू राज्यों को अपने आधीन कर लिया था, परन्तु इस स्त्री ने कुछ ऐसा यत्न कर रक्खा था कि ग्वालियर का राज यदि स्वाधीन समझा जाता था तो वह अकबर के आधीन भी नहीं समझा जाता था। वह स्त्री नितान्त स्वाधीनता प्रिय थी क्षत्री जाति के नाम को इस से शोभा थी, और राजकाज के सम्पूर्ण प्रबन्धों में इस देवी का हाथ रहता था। क्या मजाल कि रियासत का कोई काम इस की सलाह के बिना हो। यह अपने यहां के एक २ मुसद्दी का नाम जानती थी सेना के संवारने और ठीक रखने में विशेष रूप से इस का हाथ रहता था।

मृगनयनी में यह सब गुण तो थे ही परन्तु जिस बात के लिए वह अधिक सराहनीय थी वह गाने विद्या में अद्वितीय निपुण थी। रात्रि को सोने से उठने के पश्चात् हाथ में तम्बूरा लेकर प्रतिदिन ईश्वर की स्तुति के गीत गाया करती थी। जिस समय वह गाने लगती तो जड़ वस्तुयें तक ईश्वर प्रेम में मस्त हो जाती थीं मनुष्य तो फिर भी मनुष्य है इस के कोकिल कण्ठ के प्रभाव से पशु पक्षी

तक मोहित होजाते थे, और टिकटिकी बांधकर उसकी ओर देखने लगते थे।

इस स्त्री का दावा था कि केवल सङ्गीत सुना कर वह असाध्य रोगों का इलाज कर सक्ती है। उसकी समझ में कोई ऐसा रोग नहीं था जो गाने से अच्छा न हो सके। गन्धर्व विद्या को वह सब से अधिक प्रिय समझती थी। लोग इस बात को सुन कर आश्चर्य मानेंगे परन्तु सत्य यह है कि गान विद्या सर्वोपरि है।

इस के भतीजे को जो गुजरात का रहने वाला था, राजयक्ष्मा का रोग था, और बचने की कोई आशा न थी वैद्य और डाक्टर असाध्य बता चुके थे, जब वह चारों ओर से निराश हो गया तो इस से मिलने के लिए ग्वालियर के किले में आया, वार्तालाप के समय मृगनयनी ने उस से पूछा तू ने गन्धर्व विद्या की सहायता से भी इलाज किया है। वा नहीं? उस ने कम समझ मनुष्यों की तरह उत्तर दिया जहां महान् वैद्य हकीमों की कुछ नहीं चलती वहां केवल आवाज़ क्या काम कर सक्ती है।

मृगनयनी ने कहा पुत्र तू नादान है तुझको पता नहीं कि नाद विद्या मनुष्य की शारिरिक और मान्सिक अस्वथा पर कितना प्रभाव डाल सक्ती है। आज से तू यह कर कि जिस समय प्रातः काल मैं भजन में बैठूं उस समय तू चुप

चाप भजन मन्दिर में आकर बैठ जाया कर देख तो सही किस प्रकार रोग अच्छा नहीं होता।

भतीजे ने कहा बहुत अच्छा और उस दिन से वह प्रति दिन प्रातः काल के समय मन्दिर में जाने लगा। इस के अतिरिक्त उस का और कोई इलाज नहीं हुआ, जो औषधि आदि वह पहले करता भी था वह भी उसने अब बन्द करदी मृगनयनी के भजन उस के हृदय पर अपना प्रभाव डालने लगे और थोड़े ही काल में उस के हृदय में नवीन और पवित्र भाव उत्पन्न होने लगे उस की पहले की अवस्था बदल गई और धीरे २ आत्मिक आहार पाने से वह न केवल निरोग्य होगया वरन बहुत दिनों तक सुख पूर्वक जीवित रहा। जिन २ वैद्यों और हकीमों ने उसकी चिकित्सा करनेसे इन्कार करदिया था, अब उसकी इस दशाको देखकर वह सब विस्मित हुए। यह गायन विद्या का अद्वितीय प्रभाव है और जो लोग इस की व्यवस्था को अच्छी तरह समझते हैं उन को इस घटना पर किंचित मात्र भी संशय और संदेह न होगा। गाना आत्मा का आहार है एक कायर और डरपोक मनुष्य को थोड़ी देर तक वीर रस के भरे गीत सुनने दीजिये और देखिए कि उसका साहस कैसा बढ़ जाता है, जिस समय मनुष्य को सौभाग्य से ऐसा गाना प्राप्त होता है तो उसके मन में विशेष प्रकार के उच्च तथा पवित्र भावों की लहर उत्पन्न होती है रुधिर

में आवेश छा जाता है, और जब यह अवस्था उत्पन्न हो तब कैसे सम्भव है कि कोई रोग बना रह सके । जहां कहीं प्रेम और भक्ति बढ़ाने वाली सभायें होती हैं वहां संगीत और भजन गाने का विशेष रूप से प्रबन्ध होता है बिना किसी प्रकार की दिक्क़त के जब मनुष्य के प्रेम की नस आवेश में आती है तो वह मतवाला बन कर मालिक के श्री चरणों की ओर आकृष्ट होता है और वहां से पवित्र करने वाले प्रभाव अपने साथ लाता है । गान विद्या में वह शक्ति है कि निराशा में डूबे हुए जनों को आशा, मुरदा मनुष्यों को जीवन, थके मांदों को सुख और विश्राम तथा दुखित हृदयों को चैन मिल जाता है । जिस विद्या में यह गुण हों मूर्ख से मूर्ख मनुष्य भी समझ सक्ता है कि उसकी बदौलत स्वास्थ्य का प्राप्त कर लेना सर्वथा संभव है । सारी दुनियां वास्तव में एक प्रकार की रागिनी है । राग विद्या को जो मनुष्य अच्छी तरह जानता है वह सब कुछ कर सकता है परन्तु शोक ! कि यह विद्या जो हिन्दुओं ने समुचित रूप से प्राप्त की थी आज वह बड़े सन्मान के साथ नष्ट हो रही है । अब न किसी को सुर की खबर है न ताल का ज्ञान है, न राग को जानते हैं न रागिनियों का ज्ञान है । इस विषय में यहां तक अज्ञानता बढ़ी हुई है कि राग के समय और विशेषणादि से सर्वथा बेसुधी होती जा रही है रात को भैरवी गाई जाती है और दिन में विहाग सुनाया जाता है । अज्ञानी

थियेटर वालों ने तो इस प्रकार रागिनी के गले पर निर्दयता से छुरी चलाई है कि उस को सर्वथा टुकड़े टुकड़े कर डाला है।

मृगनयनी इस विद्या को वहुत अच्छी तरह जानती थी।

लङ्का नामक प्रसिद्ध इतिहासकार जो शाहजहां के समय में हुआ है। अपने प्रसिद्ध इतिहास में इस प्रकार इस देवी की विशेषताओं के विषय में वर्णन करता है:—"राजा मान-सिंह के कई रानियां थीं। उन में मृगनयनी सब से अधिक सुन्दर थी। और प्रत्येक गुण में सब से श्रेष्ठ समझी जाती थी। गाने में उस को पूरा २ ज्ञान प्राप्त था। और यदि मिथ्या न माना जाय तो वह अपने काल की पूर्ण गुरु थी। उस समय इस से बढ़कर गान विद्या का ज्ञाता कोई दूसरा मनुष्य नहीं दिखाई देता था।"

मानसिंह को भी गान और वाद्य (बाजा) का चाव (शौक) था कभी कभी रानी के साथ मिल कर स्वयम भी गाया करता था। और कभी केवल उस के ही (रानी के) कोकिल कण्ठ से गान विद्या का अमृत पान किया करता था। और कदाचित यही कारण होगा कि वह अपनी और सब दूसरी रानियों से बढ़ कर इस को प्यार किया करता था।

गान विद्या में एक राग है जिस को सब लोग दीपक राग कहते हैं। उस के प्रभाव की इतनी प्रशंसा की जाती

है कि जिस नगर में वह गाया जाय और गाने वाला यदि उस का पूर्ण ज्ञाता हो तो उस नगर में सम्पूर्ण बुझे हुए दीपक अपने आप जल पढ़ते हैं । इस राग के जानने वाले दुनियां में कम उत्पन्न होते हैं । यह रानी मृगनयनी उस राग को जानती थी । दीपक राग के गाते समय हृदय में एक विशेष प्रकार की विरहाग्नि उत्पन्न होती है और जैसे दीपक की बत्ती के जलने के साथ साथ तेल की आवश्यकता होती है वैसे ही दीपक राग के गाने के साथ इस प्रकार दूसरे रागों का प्रवन्ध रहता है जो दीपक राग से उत्पन्न हुई २ अग्नि को शान्त करते रहें । अन्यथा गायक रोगी होकर मर जाता है । ऐसे ही मनुष्य के विषय में किसी कवि ने कहा है:—

शैर—इस घर को आग लग गई घर के चिराग़ से ।
आशिक़ का सीना जलगया, सीने के दाग़ से ॥

किसी एक अक्खड़ मनुष्य ने दीपक राग सीख कर उस की शान्ति का प्रवन्ध प्रस्तुत करने के बिना ही उस के गाने का प्रवन्ध किया, परिणाम यह हुआ कि उस के शरीर पर छाले पड़ गये । पीप वहने लगी अनेक औषधि करने पर भी उस का रोग दूर नहीं हुआ । उस ने लोगों के द्वारा रानी की प्रशंसा सुनी और उस के पास आकर अपनी विपद का वृत्तान्त सुनाकर सहाय प्रार्थना की । मृगनयनी दयावान थी उसने उसको ठहरने की आज्ञा दी । कुछ दिन

निरन्तर मेघ, मल्लार राग गाकर उस के जले हुये घावों को शान्त कर दिया। यह मनुष्य सदैव चिल्लाता रहता था क्योंकि इस के शरीर में हर समय आग सी लगी हुई प्रतीत होती थी। अन्त में रानी मृगनयनी ने दीपक राग के द्वारा उसे सर्वथा निरोग्य कर दिया, और वह रानी का यश गाता हुआ अपने घर को गया।

यह आदर्श स्त्री बड़ी ही गुणवान् थी। इस ने अपनी तीव्र बुद्धि की सहायता से कई प्रकार के बाजे निर्माण किए। सितार के वर्तमान परदों से अधिक दो परदे इसी ने उत्पन्न किए थे। इस के अतिरिक्त इस ने अनेक प्रकार के संगीत भी रचे थे। गूजरी राग की उत्पन्न कर्ता इसी को माना जाता है। इस राग की अनेक विधियां हैं। यथा भील गूजरी, माल कश्मीरी, इत्यादि २ राजा मानसिंह इन गीतों का बड़ा प्रेमी था।

कहते हैं कि अकबर बादशाह के दरबार में तानसेन नामक एक बहुतही सुयोग्य गायक था। यह जाति का विप्र था और हरीदास साध का शिष्य था परन्तु वह किसी कारण से यवन होगया था। उसने रानी के गान विद्या की प्रशंसा सुनी और उसके मुख से राग सुनने का इतना इच्छुक हुआ कि दिल्ली से चलकर ग्वालियर पहुंचा और राजा मानसिंह की सहायता से रानी के संगीत सुनने की चेष्टा की राजा मानसिंह ने रानी मृगनयनी को उस के

उद्देश्य से अवगत किया। रानी ने उसको संगीत सुनाने से इनकार किया, क्योंकि वह हिन्दू धर्म्म से पतित होचुका था किन्तु जब उसने अत्यन्त नम्रता और आधीनता से विन्ती की तो मानसिंह ने उसकी प्रार्थना स्वीकार करली और पति की आज्ञा पालन के भाव से रानी ने फिर उसे अपना संगीत गाकर सुनाया। तानसेन रानी के गाने को सुनकर वाह २ कर गया। और अपने भाग्य की सराहना करने लगा कि "मेरे धन्य भाग्य जो ऐसी गायन विद्या विशारद रानी के मुख से मैं संगीत सुन सका"। यह उसके जीवन की अन्तिम घटना थी क्योंकि वह फिर ग्वालियर को छोड़कर और स्थान पर नहीं जासका। वहां रहते हुए अपने प्राण त्याग किए। ग्वालियर में उसकी कबर अब तक वर्तमान है। सैकड़ों यात्री और दर्शक उस के देखने के लिए अबभी आया करते हैं।

जो लोग यह समझते हैं कि स्त्रियां मूर्ख और अल्पबुद्धि होती हैं वह बड़ी भूल करते हैं। उन को स्मरण रखना चाहिए कि हिन्दुओं में कोई ऐसा विद्या विभाग नहीं है जिसमें स्त्रियों ने कमाल न कर दिखाया हो। हम तो यहां तक कहने के लिए तैयार हैं कि बहुत सी विद्याओं और कलाकुशल की निर्माण कर्ता हमारे यहां स्त्रियां ही हुई हैं। विद्या और गुण की रूप स्वयम स्त्री देवी है, जिसका नाम सरस्वती है।

मृगनयनी बड़ी ही गुणवान् धर्मात्मा, पतिव्रता और विदुषी स्त्री थी। और इसी स्वभाव तथा योग्यता की स्त्रियों से इस देश की शोभा थी, ऐसी ही स्त्रियों ने इस का नाम संसार में उज्ज्वल कर रक्खा था।

१०—मीरांबाई की कविता।

मीरांबाई के जीवन चरित्र का सविस्तार वर्णन हमारी अन्य पुस्तकों में आपको मिलेगा। इस जगह हम उस के बहुत संक्षिप्त वृत्तान्त के साथ उसकी काव्य का नमूना अपने पाठकों के दृष्टिगोचर करते हैं। जिससे यह पता लगता है कि मीरांबाई किस दिल व दिमाग़ की स्त्री हुई है। श्री नाभा जी भक्तमाल के रचियता उन की प्रशंसा में इस प्रकार लिखते हैं:—

दुष्टन दोष विचारि, मृत्यु को उत्तम कियो।
बार न बांका भयो, गरल अमृत ज्यों पियो॥

भावार्थ—यद्यपि बुरों की बुराई को मीरांबाई जी जानती थीं तथापि प्रभू के नाम पर मरने के लिए तैयार हो गई, और मृत्यु को उत्तम समझा, उसका बाल बांका नहीं हुआ विष को अमृत की तरह पान कर गई।

यह परम भक्तिनी मारवाड़ के बहादुर राजा जयमल की लड़की थी। यह प्रेम और भक्ति का मालिक के दर्बार से भण्डार लेकर आई थी। यह बड़ीही पवित्र हृदय और धार्मिका थी। कहते हैं कि जब यह बहुत छोटी उमर की थी तो इसके भाई का विवाह हो रहा था। नई दुलहिन

को देखकर और स्त्रियों के वार्तालाप को सुनकर भोलेपन के साथ इसने अपनी माता से पूछा "माता जी! मेरा पति कौन है मेरा विवाह किसके साथ हुआ है?" जिस सरलता के साथ कन्या ने प्रश्न किया था उसी सरलता के साथ उसकी माता ने उत्तर दिया "पुत्री! तेरा पति गिरधर नागर गोपाल है जो सम्पूर्ण ब्रह्मांड का स्वामी है" सामने कृष्ण जी की मूर्ति वर्तमान थी जिस की मीरांबाई जी की माता नित्य प्रति पूजा किया करती थी, मीरां ने उसी समय अपनी भाभी की तरह लज्जासे घूंघट निकाल लिया और माता के वचन सत्य मानकर कृष्ण जी के प्रेम में व्यस्त रहनेलगी।

पाठकगण! देखिए योग्य आत्माओं में किस प्रकार छोटी २ घटनाओं के द्वारा भक्ति के संस्कार उत्पन्न, जाग्रत और सतेज होजाते हैं, किन्तु प्रेम के मार्ग में बड़ी जानजोखिम है। इस की मनाज़िल बड़ी कड़ी है। जब तक मनुष्य जीते जी मर नहीं जाता तब तक प्रेम पंथ में पांव भी नहीं दे सकता। मीरां बाईजी के पिछले जन्म के कर्म्मों के संस्कार तो जाग उठे परन्तु हृदय को किसी ऐसे पथ दर्शक की आवश्यकता थी जो मालिक के देश की खबर सुना सके, इस लिये ज्यों २ उस का प्रेम भाव बढ़ता गया त्यों २ आन्तरिक उत्कण्ठा भी बढ़ती गई। निदान एक

दिन उस के घर में रविदास भक्तजी का चरचा हुआ। मीरां बाईजी की माता उन की शिष्य थीं। मीरां ने अपनी माता से प्रार्थना की कि मैं भी दीक्षा लाभ करूंगी। मीरां बाई की माता बड़ी दयावान और धर्म्म प्रिय थी, उस ने अपनी बेटी के पवित्र भाव को देख कर रविदास जी की सेवा में दीक्षा की प्रार्थना की। रविदास जी ने उसे अध्यात्मिक मार्ग का उपदेश दिया और उन की कृपा तथा सहायता से यह जिस उच्च पद को प्राप्त हुई वह स्वयम अपने मुख से इस प्रकार वर्णन करती है:—

सङ्गीत—मीरां मन मानी सुरति सैल असमानी।

जब २ सुरति लगे वा घरकी, पल २ नयनन पानी।
जीवन पीर तीर सालत, कसक २ कसकानी॥
मीरां

राति दिवस मोहे नींद न आवे, भावे अन्न न पानी।
ऐसी पीर बसै तन भीतर, जागत रैन विहानी॥
मीरां

ऐसा वैद मिले कोई भेदी, देश विदेश पिछानी।
तासों पीर कहूं तन केरी, फिर नहिं भरमों खानी॥
मीरां

खोजत फिरूं वैद वा घरको, कोई न करत बखानी।
रविदास सन्त मिले मोहे सतगुर, दीना सुरत शब्द दानी॥
मीरां

मैं मिली जाय पाय पिया अपना, तब मेरी पीर बुझानी।
मीरां खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी॥

मीरां

भावार्थ—मीरां की आत्मा अब भली भांति गगन मण्डल की सैर कर रही है।

(१) जब मुझ को उसके उस घर की सुध आती थी तो मेरे नेत्रों से छिन २ पर आंसुओं की धार बहती थी जिस प्रकार किसी के कलेजे में तीर लगै उसी प्रकार मेरे कलेजे में रह २ कर पीर उठती थी (२) रात दिन मुझ को नींद नहीं आती थी, खाना पीना भी अच्छा नहीं लगता था, शरीर के भीतर प्रभु वियोग की पीर (दर्द) इस प्रकार से सताती थी कि रात दिन पलक से पलक नहीं झपकती थी, (३) मैं देश २ में भ्रमण करती रही ताकि कोई ऐसा वैद्य (हकीम) मिल जाय जिस से अपने रोग का इलाज कराऊं और फिर जन्म मरण के दुःखों में न फंसूं (४) मैं इस घर के भेदी को ढूंढती फिरती थी परन्तु कोई मनुष्य उसका वर्णन नहीं करता था, अन्त में मुझको भक्त रविदास सद्गुरु जी मिलगए और सुरत शब्द (अनहद मार्ग) का दान दिया।

(५) मैं अपने प्रीतम को पागई और उस से मिल रही तब मेरा दर्द दूर होगया, मीरां ने दुनियां के सिर पर खाक डाल दिया तब उसने अपने घर का भेद पाय

अब मीरां की आत्मा भली भांति आकाश की सैर कर रही है।

आहा! कैसी उत्तम वाणी है, कैसे पवित्र भावों का प्रकाश किया गया है और छन्द रचना का भी कितना अधिक ध्यान रक्खा गया है। आदि से लेकर अन्त तक प्रेम और भक्ति भाव बरस रहा है।

इस प्रकार से प्रेम के रंग में रंगे जाने पर मीरां प्रायः उन्मत्त होकर मतवाली रहा करती थी महीनों के महीने और वर्षों के वर्ष बीत जाते थे और इस को कुछ पता नहीं रहता था कि दिन रात कब आए और कब गये।

जब मीरां युवावस्था को प्राप्त हुई तो माता पिता को इसके विवाह करने का फ़िक्र हुआ, और बहुत ढूंढ खोजकर महाराना कुम्भ के साथ जो मेवाड़ का स्वामी था इसका नाता कर दिया। जिस दिन इसको राना के साथ सगाई होने का सम्वाद सुनाया गया, तो इसने मुस्कराते हुए मुख के साथ अपनी माता जी से कहा:—

सङ्गीत।

माई मोको स्वप्न में बरनी गोपाल।

राती पीती चूनरि पहनी, मेंहदी पानी रसाल॥ १॥

माई।

काहू और की भरो भांवरी, मोको जग जनजाल॥ २॥

माई।

मीरां प्रभु गिरधरलाल संग, करत सगाई हाल ॥ ३ ॥
माई ।

भावार्थ—हे माता गोपाल जी ने स्वप्न की अवस्था में मेरे साथ विवाह कर लिया (१) रात ही को मैंने पीली चुनरी पहरी और हाथों में लाल मेंहदी लगाली (२) इस लिए तू अब किसी और की भांवरी फेर मुझ को तो यह दुनियां जनजाल दिखाई देती है (३) हे माता जी आपकी मीरां तो अब गिरधर गोपाल जी के साथ ही अपना विवाह करती है।

सब लोग विस्मित हैं कि हाय! मीरां को क्या होगया वह किस प्रकार की बहकी हुई बातें करती है। केवल उसकी माता थी जो यह जानती थी कि मीरां प्रेम के मार्ग में प्राविष्ट होचुकी है। अब उसका आत्मा संसारी नहीं प्रत्युत स्वर्गीय होगया है। जिस दिन मीरां ने विवाह का सम्वाद सुना था उस दिन वह हरी प्रेम में इतनी मस्त थी कि उस का कोई अनुमान नहीं होसक्ता। उसने कई नए २ भजन उस दिन रचकर गाये और इस प्रकार वह दिन व्यतीत होगया।

होते २ विवाह का दिन भी आ पहुंचा मीरां उसी प्रकार प्रेम रस में डूबी हुई थी। लोगों ने किसी प्रकार उस का विवाह कर दिया और वह चित्तौड़ के राना के घर आई। यहां भी वह उसी प्रकार हरी प्रेम में बे सुध

रहने लगी । पहले पहल तो सास ने बहुत कुछ समझाया बुझाया परन्तु उस पर किसी के कहने सुनने का कुछ प्रभाव न हुआ । चित्तौड़ का राना हिन्दुओं का सूर्य्य समझा जाता था । जब सब लोगों को मीरां की अवस्था का पता लगा तो वह कहने लगे कि यह कैसी पागल लड़की है जिस को अपने कुल की लाज नहीं है । मीरां ने इस बात की भी परवाह न की । तब उस को एक पृथक महल में स्थान दिया गया और उसकी ओर से सब वे परवाह हो गये । मान सन्मान जाता रहा, किन्तु मीरां ने इसकी भी परवाह न की हाथ में दोतारा लिए रात दिन प्रभु की महिमा के गीत गाया करती थी । बाज़ समय गाते २ घर से बाहर निकल जाया करती थी और उसी प्रकार गाती झूमती हुई फिर महल में लौट कर प्रविष्ट होती थी । इस बात से सब को बड़ा खेद हुआ, रानियों ने बहुतेरा ऊंच नीच समझाया परन्तु मीरां का प्रेम भाव बहुत चढ़ा हुआ था वह किंचित मात्र भी अपनी क्रियाओं को त्यागने के लिए तैयार न हुई । प्रेम बड़ी ही विचित्र वस्तु है ।

दोहा—जहां बाज बासा करे, पक्षी रहे न कोय ।
जहां प्रेम परकाशिया, मन क्यों विकलप होय ॥

घर बाहर के सब लोग समझा कर थक गए किन्तु मीरां बाई जी पर किसी के कहने सुनने का कुछ प्रभाव

न हुआ । अन्त में यह सलाह की गई कि इसको जान से वध कर दिया जाय क्योंकि इस के सिवाय अब और कोई उपाय नहीं सूझता । राना कुम्भ ने हलाहल विष का एक प्याला मंगवा कर मीरां जी की एक दासी को दिया और उस से कहा कि तू मीरां के पास जाकर कहदे कि "यह गिरधर गोपाल जी का चरणामृत है इसको पीलो" । दासी में इतनी सामर्थ्य कहां थी कि महाराना कुम्भ की आज्ञा को भंग करती । उस ने मीरां बाई जी के समीप विष का प्याला लेजाकर उसी प्रकार कह दिया । यद्यपि मीरां जी को ज्ञात हो गया कि यह विष का प्याला है, और राना ने अपने कुल की लज्जा रखने के कारण उस के मारने के लिए भेजा है तथापि भगवान् का चरणामृत बतलाए जाने के कारण मीरां ने उसको परित्याग करना उचित नहीं समझा । और गिरधर गोपाल जी के चरणामृत के समान ही जानकर उसको आंख बन्द करके पी गई और हाथ में दोतारा लेकर प्रभु की महिमा सम्बन्धी गीत गाने लगी ।

भजन [१]

राना जी ज़हर दिया मैं जानीं ।

जिन हरि मेरो नाम निबेरो, छख्यो दूध और पानी ॥ १ ॥

राना जी ।

जब लग कंचन कसियत नाहीं, होत न बारह बानी ॥ २ ॥
राना जी ।
अपने कुल को परदा करियो, हम अबला बौरानी ॥ ३ ॥
राना जी ।
शुपच भक्त वारा तन मन जो, हम हरि हाथ विकानी ॥४॥
राना जी ।
मीरां प्रभु गिरधर भजिवे को, सन्त चरण लपटानी ॥५॥
राना जी ।

एक घड़ी बीती, दो घड़ी बीती, यहां तक कि चार घड़ी बीत गई, लोग उद्वीक्षण कहते रहे कि मीरां अब मरती है अब मरती है परन्तु मीरां के मारने से हलाहल विष ने इन्कार कर दिया । जिस की रक्षा स्वयम परमात्मा करते हैं उस को कौन मार सक्ता है । चार घड़ी के पश्चात् मीरां जी ने फिर दूसरा भजन गाना आरम्भ किया ।

भजन [२]

हमारे मन राधा श्याम बसी ।
कोई कहे मीरां भई बावरी, कोई कहे कुल नासी ॥ १ ॥
हमारे मन ।
खोलिकै घूंघट मारिकै गाती, हरी ढिग नचत कसी ॥२॥
हमारे मन ।

वृन्दावन की कुञ्ज गलिन में, भाल तिलक अरसी ॥ ३ ॥

हमारे मन।

विष का प्याला राना जी ने भेजो, पीवत मीरां हंसी ॥५॥

हमारे मन।

मीरां के प्रभु गिरधर नागर, भक्ति मांहि फंसी ॥ ५ ॥

हमारे मन।

जब लोगों ने देखा कि मीरां ऐसा हलाहल विष पीकर भी न मरी, और उसी प्रकार जीती जागती हुई हरि की महिमा सम्बन्धी गीत गा रही है, तो सब को बड़ा आश्चर्य हुआ और सब चुप हो गए। कुछ दिनों के लिए उस को दुःख देने से रुके रहे। परन्तु मीरां ने कुछ इस प्रकार का ढङ्ग अख्तियार कर रक्खा था कि वह अधिक दिनों तक चुप नहीं रह सके थे। उनकी क्रोध की अग्नि मीरां की स्वच्छता को देख कर फिर भड़क उठी।

एक दिन मीरां अपनी कोठरी में बैठी हुई इस प्रकार बोल रही थी जैसे वहां कोई दूसरा पुरुष बैठा हो। संयोग से उसी समय राना कुम्भ वहां जा निकला। उसने मीरां से पूछा "किस के साथ बातें कर रही है"। मीरां प्रेम और भक्ति के भाव में दीवानी होरही थी, उसको अपने तन मन की कोई सुरत नहीं थी। महाराना को उत्तर देने के स्थान में वह खिलखिलाकर हंसने लगी और हाथ में

दोतारा लेकर गाने लगी। इस समय मीरां जी ने जिस गीत का उच्चारण किया था वह निम्न लिखितानुसार है।

सङ्गीत ।

राना जी मैं सांवरो रंग राची।

सेज सिंगार पग बांधि घुंघुरू, लोकलाज तजि नाची।

राना जी।

गई कुमति लई साधु की संगत, भक्ति रूप भई सांची।

राना जी।

गाय गाय हरि के गुण निशदिन, काल व्याल सों बांची।

राना जी।

उन बिन सब जग रूखा लागे, और बात सब कांची।

राना जी।

मीरां श्री गिरधर गोपाल सों, भक्ति रसीली जांची।

राना जी।

भावार्थ—हे रानाजी! मैं श्री सांवरे कृष्ण जी के प्रेम में डूबी हूं। मैं अपनी सेज को सुसज्जत करके और अपने पांव में घुंघरू बांधकर लोक लज्जा को तजकर अपने प्रभू की प्रसन्नता के लिए नाच रही हूं। मेरी कुमति अर्थात् सांसारिकता जाती रही मुझे सन्तों की संगत प्राप्त हुई और मुझ में सच्ची भक्ति उत्पन्न हुई। मैं श्री भगवान् जी के गुणानुवाद रात दिन गाकर सर्प रूपी जो काल है उसके डसने से बच गई। उस मालिक के बिना मुझको

सब संसार रूखा लगता है। और उनके बिन और सब बातें मिथ्या प्रतीत होती हैं। मीरां ने श्री गिरधर गोपाल जी से रसीली भक्ति की प्रार्थना की है।

राणा ने समझा अब इसमें अपनी सुध बुध कुछ नहीं रही, यह बेसुध और दीवानी है। इसमें बुद्धि और ज्ञान नहीं है। मीरां ने राना की ओर दृष्टि की और फिर गाने लगी।

सङ्गीत

एरी मैं तो दर्द दीवानी, मेरा दर्द न जानै कोई।
घायल की गति घायल जानै, और न जानै कोई॥
छुरी ऊपर सेज हमारी, पौढ़न केहि विधि होई।
मीरां का दुख तबहि मिटेगो, वैद सांवरो होई॥

भाषार्थ—मीरां अपने प्रेम में मस्त होकर अपनी बुद्धि रूपी सखी को सम्बोधन करके कहती है "हेरी सखी मैं मारे दर्द के दीवानी हो रही हूं मेरे दर्द को कोई नहीं जानता। घायल की अवस्था को घायल मनुष्य ही जान सक्ता है दूसरा नहीं जान सक्ता। मेरी सेज अर्थात् (विस्तर) छुरी की धार के ऊपर है मेरा लेटना क्योंकर हो सक्ता है मीरां का दुख तब ही मिट सकेगा जब वैद्य रूपी सांवरे श्रीकृष्ण जी मुझ को प्राप्त होंगे।

जब राज घराने के लोगों ने देखा कि मीरां की उद्दण्डता दिनों दिन बढ़ती जाती है तो उन्होंने फिर उसको

मार डालने का यत्न किया। अब की बार उन्होंने मीरां के पास डब्बी में बन्द कर के एक काला नाग भेजा ताकि उस के डसने से मीरां के प्राण निकल जांय। मीरां ने उस विषधर सर्प को भी कृष्ण जी के रूप में देखा और उसने भी मीरां जी को डसने से इन्कार कर दिया। इस अवसर पर मीरां जी ने जो भजन गाया था वह बड़ा ही कठिन है इस लिए यहां अंकित नहीं किया जाता।

मीरां का प्रेम भाव दिन प्रति दिन बढ़ता गया यहां तक कि एक दिन उस ने राज महल को परित्याग किया और श्री कृष्ण जी के गुणानुवाद गाती हुई वृन्दावन की ओर चल पड़ी इस अवसर पर मीरां जी ने जो भजन गाया था वह निम्न लिखतानुसार है।

संगीत [१]

मेरे मन गिरधर गोपाल दूसरा न कोई
जाके सिर मोर मुकुट मेरा पति सोई,
शंख चक्र गदा पद्म कण्ठ माल होई।
मेरे मन०
सन्तन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई,
अब तो बात फैल गई जाने सब कोई
मेरे मन०
मैं तो परम भक्ति जानि जगत देखि सोई,
मातु पिता पुत्र बन्धू संग नाहिं कोई।
मेरे मन०

मैं पिया को देख हंसी लोग जाने रोई,
आंसु अन जल सींच २ प्रेम बेलि बोई।
मेरे मन०
लोक श्रास छांड़ि दियो कहा करे कोई,
मीरां की लगन लगी है होनी हो सो होई।
मेरे मन०

भावार्थ—मीरां कहती है कि मेरे मन में केवल मात्र गिरधर गोपाल जी बसते हैं और किसी दूसरे को मैं नहीं जानती। जिस के सिर पर मोर पंख का मुकुट है वही मेरे पति हैं। उन के हाथों में शंख चक्र गदा पद्म हैं और गले में माला धारण किए हुए हैं। सन्तों के संग बैठ २ कर मैंने लोक लज्जा को तज दिया, अब मेरे प्रेम की बात सब जगह फैल गई और सब लोग जान गए। मैंने तो भक्ति को सब से श्रेष्ठ समझा है और जगत से मौन होगई हूं। माता पिता पुत्र भाई इन में से कोई भी साथ जाने वाला नहीं है। जब मैं अपने प्रीतम को देख कर प्रेम से हंसती हूं तो संसारी जीव उसको रोना समझते हैं। मैंने इस प्रेम की लता को आंखों के जल से सींच २ कर बोया है। मैंने लोक निन्दा के भय को छोड़ दिया मेरा कोई क्या बिगाड़ सक्ता है। मेरे हृदय की लगन मालिक के चरणों के साथ लगी है अब जो कुछ होना हो सो हो।

संगीत [२]

मेरा मन लग्यो सखी सांवलिया सों,
काहु की वरजी ना हीं रहूंगी।
जो कोई मो को एक कहैगो,
एक की लाख कहूंगी॥
सास निरदयी ननद हठीली,
यह दुख नाहीं सहूंगी।
मीरां प्रभु गिरधर के कारण,
जग उपहास सहूंगी।

मीरां सचमुच संसारी जीव नहीं थी, वह स्वर्गीय आत्मा थी। जब यह वृन्दावन को जा रही थी तो मार्ग में उसकी वाणी को सुन कर मनुष्य की कौन कहे जङ्गल के पशु पक्षी भी मोहित हो जाते थे। जिस ने उस को देखा वही थोड़ी देर के लिये मालिक के चरणों में प्रेम से झुक गया। जब वह वृन्दावन में पहुंची तो उसकी अवस्था कुछ और की और हो गई। वह मालिक के प्रेम में मस्त हो कर गाती भी थी और नाचती भी थी। वृन्दाबन में पहुंच कर जो सङ्गीत उसने उच्चारण किये थे उन में से कुछ चुने हुए सङ्गीत हम यहां अंकित करते हैं:—

लावनी

सखी आज देखूं गिरधारी
सुन्दर वदन मदन की शोभा जितवित अति प्यारी। सखी०

वंशी बजावे कान्ह कुञ्जन में, गावत ताल तरङ्ग में।

नचत ग्वाल गण में, माधुरी मूरती है प्यारी।

सखी०

बसा रहै निशि दिन हृदय विच, कबहूं टरत न टारो।

ताही पर तन मन वारी

सखी०

सांवरी मूरति मोहनी निहारत, लोक लाज तजि डारी,
तुलसी बनि कुञ्जन सञ्चारी, गिरधरलाल नवल नटनागर
मीरां बलिहारी।

सखी०

नं० (२)

जबते मोहि नन्द नन्दन दृष्टि पड़ो माई।
तबते परलोक लोक कुछ न सोहाई॥
मोर मुकुट चन्द्रमासो, शीश मध्य सोहे।
केसरि को तिलक ऊपर, तीन लोक मोहे॥
सांवरो त्रिभंग अंग, चितवन में टोना।
खञ्जन औ मधुप मीन, भूले मृग छौना॥
अधर बिम्ब अरुण नयन, मधुर मन्द हांसी।
शदन दमक शाड़ि दुति, चमके चपलासी॥
छुद्रघण्टिका अनूप, नूपर धुनि सोहे।
गिरधर के चरण कमल, मीरां मन मोहे॥

मीरां बाई जी बहुत दिनों तक वृन्दावन में रही। हज़ारों की संख्या में उन्होंने भजन गाए, और विशेषता यह कि उन में सब प्रकार के और सब रागों के भजन वर्तमान हैं उन सब को इन किंचित पृष्ठों में लिपिबद्ध करना असम्भव है। वृन्दावन में उसकी बदौलत हजारों मनुष्यों को मालिक के प्रेम का दान मिला। कितने जीवन पवित्र होगए, रूप और सनातन दो गोसांई मीरां जी के बड़े भक्त थे। यहां ही महाराना कुम्भ भी उसको देखने आया, और जब मीरां मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठी हुई प्रेम के गीत गा रही थी कुम्भ भिखारियों का भेष बनाए हुए वहां पहुंचा, मीरां ने कहा महात्मा मैं स्वयम भिखारनी हूं तुम को क्या भिक्षा प्रदान करूं। कुम्भ ने सिर को नङ्गा करके कहा अपने अपराधों की क्षमा प्रार्थना कराता हूं। मीरां ने कहा महाराज तुमने क्यों आने का कष्ट उठाया मैं तो आपको पहले ही क्षमा कर चुकी हूं। मीरां और राना कुछ देर तक रोते रहे। उस धार्म्मिका देवी के प्रभाव से राना कुम्भ की आयु का अन्तिम भाग बहुत पवित्र बन गया।

जब चित्तौड़ से मीरां जी के दर्शनों के लिये बहुत से मनुष्य आने लगे तो मीरां जी ने वृन्दावन को छोड़ दिया और द्वारिका को चली गई। वहां भी कुछ काल तक भगवान का भजन करती रही और लोगों को हरि की

महिमा सम्बन्धी गीत सुनाती रहती थी। एक दिन उस को इस शरीर के त्याग देने का ख्याल आया और वह समुद्र के किनारे मस्त होकर गाने लगी ॥

संगीत (१)

हरी तुम हरो जनन की भीर
द्रोपदी की लाज राखी, प्रभू बढ़ायो चीर।
हरि तुम०
भक्त कारण रूप नर हरि, धरयो आप शरीर।
हरि तुम०
हिरण्यकश्य मारि लीन्हो, हरयो नांही धीर।
हरि तुम०
बूड़त में गज ग्राह मारयो, कियो बाहर नीर।
हरि तुम०
दासी मीरां लाल गिरधर, दुष्ट जहां तहां पीर ॥
हरि तुम२

भजन (२)

ज्यों जानो त्यों लीजिए सजन,
सुधि ज्यों जानो त्यों लीजिए।
तुम बिन मेरो और न कोई,
कृपा सांवरे कीजिये।
बासर भूख रैन नहिं निद्रा,
यह तन पल पल छीजिए।
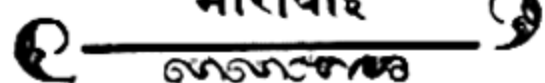
मीरां प्रभु गिरधर नागर अब,
मिलह बिछुड़न नहिं दीजिए ॥

इस भजन का गान करती हुई वह इतना मालिक के चरणों में लीन होगई कि उसको अपनी कोई सुरत नहीं रही, उसका मुख स्वर्गीय तेज से चमक उठा और थोड़ी देर में उसका आत्मा ब्रह्मरन्ध्र को भेदन करता हुआ उस पद को प्राप्त हुआ जिसकी ऋषि मुनि अभिलाषा करते हैं। मीरां बाई आध्यात्मिक बाटिका की कोयल थी और स्वर्गीय गीत सुनाने के लिये आई थी बड़े सौभाग्य रहे होंगे वह पुरुष जिन्होंने उसका दर्शन किया होगा मीरां जी ने अपनी काव्य को स्वयम लिपि बद्ध नहीं किया था। प्रत्युत सुनने वाले भक्त जनों ने लिपि बद्ध किया था।

परमात्मा करे जो लोग इस संक्षिप्त वृत्तान्त को पढ़ें उनको परमात्मा के चरणों का वह प्रेम प्राप्त हो जो मीरां को प्राप्त हुआ था।

११—लाजवन्ती।

दो०—हिन्दू नारि समाज जग, नहीं पतिव्रता कोय।
मृतक पती संग जलि मरै, नेक अधीर न होय॥

जिस देवी का वृत्तान्त हम पाठकों के दृष्टि गोचर करने लगे हैं वह सम्राट अकबर के समय में हुई थी। अकबर का जन्म मुसलमान के घर में हुआ था परन्तु वह अपने आत्मा के विचार से हिन्दू था और यही कारण है कि उसने हिंदुओं पर जय पाई हिन्दू कभी किसी शत्रु से अब तक पराजित नहीं हुए थे यह सत्य है कि यवनों के कोश में हिन्दू शब्द के अर्थ नीच और दास के लिखे गए हैं और उनका प्यारा आर्यवर्त घृणा और तिरस्कार युक्त शब्दों में हिन्दुस्तान कहलाता था, परन्तु क्या सचमुच हिन्दू नीच और दास थे? कदापि नहीं संसार में अब भी कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो किसी सच्चे हिन्दू को अपना दास बना सके। शरीर जंजीर में बंधा हो, हाथ पांव बुरी तरह जकड़ दिये गये हों परन्तु आत्मा पर कब कोई विजय प्राप्त कर सकता है? हिन्दुओं ने यवनों के हाथों से क्या आपदायें नहीं सहीं? सैकड़ों बार उनके वीर और शूरमा युवकों ने

केसरी वस्त्र पहने हुए किलों से निकलकर जौहर दिखाया तलवारों की धारों और तोपों बन्दूकों की गोलियों की वर्षा से उनके शरीर टुकड़े २ होगये, एक २ लड़का कट २ कर मर गया परन्तु गुलामी के कलङ्क से अपनी जाति को बचा गया। हज़ारों स्त्रियां, हजारों अल्पायु लड़कियां हज़ारों वृद्ध मातायें चिताओं पर बैठकर जलकर मर गईं परन्तु हिन्दू जाति के नाम पर कलंक नहीं आने दिया। तथापि हमको फिर भी मानना पड़ेगा कि अकबर ने किसी सीमा तक बहुसंख्यक हिन्दूओं को अपने आधीन बना लियाथा। परन्तु यह कार्य्य उसने तलवार के बल से नहीं किया था वरन उसमें हिन्दू आत्मा थी और उसके बल से उसने यह कार्य्य किया था।

जब उदयसिंह की रानी को निश्चय होगया कि अब किले के सुरक्षित रहने की कोई आशा नहीं है तो उसने बचे खुचे राजपूतों से साफ शब्दों में कहदिया कि अब चित्तोड़ के बचने की आशा नहीं है। और जब बहादुर जयमल राठौर अचानक धोखे में अकबर के हाथ से मारा गया उस के छोटे २ बच्चे और लड़कियां मारी जा चुकीं तो जयमल की धर्मपत्नी ने बहादुर राजपूतों को अपने हाथ से पान के बीड़े देकर मरने के लिय उद्यत किया और स्त्रियों को चिता पर सती होने की बधाई सुनाई।

यह खबर चित्तोड़ के इर्द गिर्द जंगल की आग की तरह फैलगई ग्रामों के मन चले और बांके क्षत्री देश और जाति के नाम पर बलि होने के लिये झुंड के झुण्ड एकत्र हुए। जिस २ शूरमा के कान में यह शब्द पहुंचा वही चित्तोड़ के किले की दीवार के नीचे मरने के लिये हथियार बांधकर चल पड़ा। किले का दरवाज़ा खोल दिया गया शेर मरदों का दल समुद्र की लहरों की तरह उछलता हुआ यवन सेना की ओर आगे बढ़ा। दोनों ओर की फौजें वीरता के साथ लड़ने लगीं। राजपूत संख्या में कम थे यवन उनकी अपेक्षा बहुत अधिक थे। एक २ राजपूत दस २ वीस २ यवनों को मार कर आप भी जूझता था। अकबर दूर से खड़ा हुआ उनकी वीरता का तमाशा देखता था। उसके मुखसे यह शब्द अनेक बार निकले कि "यदि मेरे पास राजपूतों के दस वीस रिसाले होते तो मैं दुनियां को सहज में विजय कर सकता"।

कई घंटे तक घमसान का युद्ध होता रहा संग्राम भूमि घायलों और मुरदा मनुष्यों की लोथों से पट गई। चारों ओर रुधिर की धारें बहती हुई दिखाई देती थीं। आकाश में काग, गिद्ध और चीलें मंडला रही थीं। "मारो २" के शब्द के अतिरिक्त और कुछ सुनाई नहीं देता था। उनमें बाज़े २ ऐसे शूरमा क्षत्री थे कि वह शिर कट चुकने पर भी उनके कबन्ध (अर्थात् सिर्फ धड़) हाथ में तलवार लिये हुये

शत्रुओं को मारने के लिये दौड़ते फिरते थे। अनेक यघव इन कवन्धों के हाथ से मारे गये। यह कवन्ध विना शिर के लहू लहान धड़ लिये हुए बड़े भयानक प्रतीत होते थे। कितने ही राजपूत शूरमाओं के कटे हुए सिर "मारो २" का शब्द उच्चारण कर रहे थे। छः सात घंटे के पश्चात् सारे शूरमा स्वर्ग को पधार गए। उनमें से एक राजपूत ने भी अकबर की आधीनता स्वीकार न की। इधर राजपूत शूरमाओं की इति श्री हुई उधर किले के भीतर से धुयें की गुञ्ज आकाश की ओर जाने लगी। भयंकर धमाके का शब्द हुआ उसी समय आग की ज्वालायें उठने लगीं अकबर ने जान लिया कि राजपूत स्त्रीयों ने भी जौहर किया और वह सब आग में जल मरीं। शीघ्रता के साथ वह किले में प्रविष्ट हुआ परन्तु उसके हाथ क्या आया ?

उजड़ा हुआ नगर, जली हुई इमारतें, जो हड्डियों और लोथों से भरी हुई थीं। यह हृदय फारित (सीनाफिगार) दृष्य देखकर ज़ालिम की आंखों में आंसू भर आये। राज्य बढ़ाने के लोभ और प्रभुता के मद से संसार में कितना रक्त पात होता है। अकबर ने इस अवसर पर जुझे हुए हिंदुओं की गिनती करने के लिए उन के जनेऊ उतरवाये और जब उनको तोला गया तो वह साढ़े चौहत्तर मन निकले। हिंदू अब तक अपनी विशेष चिठ्ठियों के लिफाफे पर साढ़े चौहत्तर (७४॥) का अंक लिख देते हैं ताकि सिवाय उस

मनुष्य के कि जिस के नाम यह पत्र लिखा गया है कोई और दूसरा मनुष्य उसको न खोले। यह एक प्रकार की सौगन्द है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि कोई दूसरा मनुष्य इसको खोले अथवा पढ़ेगा उस को उतना पाप लगेगा जितना कि अकबर को साढ़े चौहत्तर मन यज्ञोपवीत धारियों के वध करनेपर लगा था। ज्ञानवान हिन्दू अबतक बराबर इस सौगन्द की आन मानते हैं।

राजपूत मर मिटे। अकबर मैदान युद्ध में खड़ा हुआ इस भयानक दृश्य को देख रहा था, उसके मन में तरह २ के विचार उत्पन्न हो रहे थे। चित्तौड़ की विजय करके मैंने क्या पाया। हीरे मोतियों के बदले मुरदों और हड्डियों के ढेर हाथ आये। प्रजा के बहादुर शूरमाओं की लोथें हाथ आईं बसे हुए नगर के स्थान में जला हुआ उजड़ा हुआ नगर हाथ आया। अभी वह इन विचारों में डूबा हुआ था कि कुछ यवन सिपाहियों ने एक हाथियार बन्द अल्पायु राजपूत को अकबर के सामने पेश किया। जिसके हाथ बांधे हुए थे और जिसके मुख से शोभा बरस रही थी, आंखें कबूतर के खून की तरह लाल हो रही थीं।

अकबर ने पूछा तू कौन है और ऐसे भयंकर समय में यहां क्यों आया है?

उसने उत्तर दिया मैं पुरुष नहीं स्त्री हूं अपने स्वामी की लोथ खोजने के लिये यहां आई हूं।

अकबर—तेरा नाम क्या है?

स्त्री—मेरा नाम लाजवन्ती है।

अकबर—तू कहां रहती है?

लाजवंती—मेरा घर डॉगरपूर में है।

अकबर—चित्तौड़ और डॉगरपूर के बीच में तो बड़ा फासला है तू यहां क्यों और कैसे आई?

लाजवन्ती—मैंने सुना कि चितौड़ में जौहर होने वाला है स्त्री पुरुष दोनों धर्म्म की वेदी पर बलिदान होने की तैयारियां कर रहे हैं। मेरा पति इस खबर को सुनकर पहले ही लड़ने के लिए चला आया था। मुझको पीछे से पता लगा। मैं भी उस बात की इच्छुक थी कि मुझे सौभाग्यवती राजपूतनियों के साथ चिता पर जलने का अवसर मिलेगा परन्तु मेरे यहां पहुंचने से पहले सब कुछ हो चुका था, इस लिये मैं अपने स्वामी जी की लाश को रण भूमि में खोज रही थी, कि तेरे अत्याचारी यवन सिपाहियों ने मुझे कैद कर लिया।

अकबर को राजपूतनी की बातों को सुनकर आश्चर्य हुआ। सब लोग उसको "जहांपनाह, हज़ूर और खुदावंद" कहकर सम्बोधन करते थे परन्तु वह लड़की उसको निर्भयता से कह रही है कि "तेरे अत्यचारी यवन सिपाहियों ने मुझको कैद कर लिया" वह राजपूतों और राजपूतनियों

की वीरता को पहले ही से माने हुये था, अब इस लड़की की निर्भयता से और भी दङ्ग होगया।

अकबर—तू मुझको जानती है?

लाजवन्ती—हां तेरा नाम अकबर है, और तू ही हमारे कर्म धर्म्म का शत्रु है।

अकबर—क्या तेरे मन में शंका नहीं है जो इस प्रकार निर्भयता से बात चीत कर रही है?

लाजवन्ती—मनुष्य को भय केवल उस समय तक रहता है जब तक उसको प्राण प्यारे हैं। मेरी जान देर से निकल चुकी है मुझको किसका भय है?

अकबर—तूने कैसे जाना कि तेरा स्वामी इस लड़ाई में ज़रूर जूझ गया है, सम्भव है कि उसने भागकर अपने प्राण बचा लिए हों।

लाजवन्ती—यह तेरा कथन सर्वथा मिथ्या है। सच्चा राजपूत मैदान युद्ध से कभी नहीं भागता, यह तेरी भूल है मुझको अटल विश्वास है कि मेरा पति सच्चा राजपूत है और वह कभी मैदान युद्ध से भागने वाला नहीं है।

अकबर—तेरा उसके साथ कब विवाह हुआ था?

लाजवन्ती—मेरी अभी केवल वरिच्छा (मङ्गनी) हुई थी विवाह की अभीतक नौबत नहीं आई थी कि तूने चित्तौड़ पर आक्रमण करदिया और मेरे प्राणपति इस युद्ध में आहुति हो गए।

अकबर को यह सुनकर और आश्चर्य हुआ कि उस का अभी विवाह भी नहीं हुआ केवल मङ्गनी हुई है और वह ऐसे पति के साथ भी जलकर भस्म होना चाहती है। उसका हृदय सहानुभूति (हमदर्दी) के भाव से भर गया उसने समझाने की रीति पर कहा "ऐ अच्छी लड़की! अभी जब कि तेरा उसके साथ विवाह भी नहीं हुआ तो तेरा पति क्यों कर हो सकता है? तू उसके साथ अपने आप को चिता में भस्म न कर, तू अपने घर को लौट जा, तूने अभी इस दुनियां का कुछ नहीं देखा, तेरा विवाह किसी और राजपूत के साथ हो रहेगा।

अकबर के मुख से इन शब्दों को सुनकर लाजवन्ती के क्रोध की सीमा न रही। उसने अपने दांत पीसकर कहा हे यवन! क्या तुझको ईश्वर ने इसी लिए बल दिया है कि तू किसी अबला कन्या की बेइज़्ज़ती करे।

अकबर उसके इन शब्दों को सुनकर कांप उठा उसका हृदय पहले ही व्याकुल होरहा था उसने कहा लड़की मैं तुझको बेइज़्ज़त करना नहीं चाहता। केवल तेरे भले के लिए तुझको समझाया था यदि तू नहीं मानती तेरी इच्छा, परंतु मुझको आशा नहीं है कि इन लाशों में तुझको अपने मंगेतर की लाश मिलसके यदि तुझ में साहस हो तो जाकर खोजले।

अकबर की आज्ञा पाते ही सिपाहियों ने उसकी मुशकें खोलदीं। और वह निर्भय राजपूतनी उस भयंकर

मैदान में घूम २ कर अपने पति की लाश को ढूंढने लगी। कुछ देर के पश्चात् एक नवयुवक को लोथों के बीच से उठाकर अलग ले आई और किले के भीतर से लकड़ियां लाकर अपने हाथ से चिता तैयार की। और पति की लोथ को सन्मान के साथ उसपर रख दिया फिर पांच बार उसकी प्रदक्षिण (फेरे) देकर चकमाक से आग निकालकर अग्नि दी। और चिता जलने लगी तो आप भी उसके बीच में देवी की तरह जा बैठी। पति के सिर को प्रेम के साथ गोद में रखलिया और चुपचाप सबके देखते देखते जलकर भस्म होगई। अकबर और उसकी संपूर्ण सेना के लोग यह दृश्य देखते रहे। उनके आश्चर्य का क्या ठिकाना था। उनके हृदयों में जो २ विचार उस समय उत्पन्न हो रहे थे उनको कौन वर्णन कर सकता है।

जब वह पूर्णतः जल कर भस्म हो गई तो अकबर के एक यवन कवि (शायर) ने यह शेर कहे:—

शेर—हमचू हिन्दू ज़न कसे दर आशकी, मरदाना नेस्त।
सोखतन बर शमा महफिल, कार हर परवाना नेस्त।
जोशशे इश्कअस्त ईआं किस्सओ अफसाना नेस्त।
दादने जां अस्त ईजां वाज़िए तिफलाना नेस्त॥

तातपर्य्य—हिन्दू स्त्री के समान प्रेम-पन्थ में और कोई भी बहादुर नहीं है। शमा के दीपक पर जल कर भस्म हो जाना प्रत्येक परवाना (पतंग) का काम नहीं है। यह प्रेम

का आवेश है यह कोई किस्सा कहानी की वात नहीं है। यह प्राण देने का काम है, यह कोई लड़कों का खेल नहीं है।

इन जौहर करने वालों में हिन्दु धर्म्म की निराली शान थी, वह जप तप, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के सजीव चित्र थे। सच्चा हिन्दू वह है जो जड़ पूजक नहीं है वरन् आत्मा पूजक है। उसकी दृष्टि में आत्मा अजर अमर है। और इसी कारण से वह शरीर की कुछ हकीकत नहीं समझता जो मरने से डरता है वह हिन्दू नहीं है। न वह भक्ति, योग, प्रेम और ज्ञान की असलियत को जानता है। परमभक्त श्रीकबीर साहब जी कहते हैं:—

दोहा—जब लग मरने से डरै, तब लग प्रेमी नांहि।
बड़ी दूरि है प्रेम घर, समझ लेहु मन मांहि॥
जा मरने से जग डरै, मोरे मन आनन्द।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरण परमानन्द॥

ईश्वर आशीर्वाद दें कि हम में ऐसे धर्म्मवान आत्मा फिर उत्पन्न हों।

१२–डोंगरपुर की ठकुरानी

डोंगरपुर मेवाड़ के प्रान्त में है। जिस समय का हम वर्णन करने लगे हैं उस समय डोंगरपुर की गढ़ी का स्वामी ठाकुर राम सिंह था।

डोंगरपुर की गढ़ी एक सुन्दर पहाड़ी पर बनी हुई थी उसके चारों ओर वहुत से वृक्ष लगे हुए थे। कहीं २ पानी के झरने भी बह रहे थे। ठाकुर रामसिंह आराम के साथ तकिया लगाए हुए वैठा था। खबर नहीं उसके मन में क्या विचार उत्पन्न हो रहे थे। वह चुप चाप वैठा हुआ था परन्तु रूप रंग, आंख चितवन और होठों से तलमलाहट प्रगट होती थी। और यह प्रतीत हो रहा था कि उस के मन में विशेष प्रकार की चिन्तायें उठ रही हैं, उसकी आयु प्रायः पचास वर्ष की थी परन्तु हाथ पांव सब दुरुस्त थे। और समय की कठिनाइयों के कारण उस के शरीर के सब कल पुर्ज़े ठीक २ वन रहे थे।

ठाकुर रामसिंह इस प्रकार सोच में वैठा हुआ था। कि उसका नौकर सामने आया और हाथ वांध कर वोला महाराज! राना साहव का एक सवार दरवाज़े पर खड़ा है और कहता है कि आप से मिलना चाहता हूं।

रामसिंह—"कौन राना ?"

अभी यह शब्द उस के मुख से समाप्त भी नहीं होने पाए थे कि एक हथियार बन्द राजपूत हाथ में भाला लिये हुए उस के सन्मुख आ खड़ा हुआ और प्रणाम के पश्चात् कहने लगा–"ठाकुर साहब क्षमा कीजिएगा, यह समय कुछ इस प्रकार का है कि हम फौजी आदमियों को कभी २ अप्रिय और अपनी इच्छा के विरुद्ध काम करने पड़ते हैं।"

रामसिंह—"मैं आपके अभिप्राय को समझ नहीं सका आप विस्तार पूर्वक वर्णन करें ?"

राजपूत—"एक मनुष्य राज महल से भाग आया है। हम उस का पीछा करते हुये चले आए हैं, यहां आकर वह कहीं छिप रहा। अब उस का पता नहीं चलता। पहाड़ी के इधर उधर के जङ्गल की खाक छान मारी परन्तु वह हाथ नहीं लगा। संभवतः वह आपकी गढ़ी के किसी कोने में छिपा हुआ है और इसी कारण से हम सब लोग आपकी गढ़ी की तलाशी लेना चाहते हैं।"

रामसिंह ने कुछ उत्तर नहीं दिया, विस्मय और चिन्ता के समुद्र में कुछ देर तक डूबा रहा। सवार ने फिर कहा "ठाकुर साहब ! हम लोगों का आप की इज़्ज़त का ख़याल है। परन्तु हम विवश हैं क्योंकि चित्तोड़ की गद्दी पर इस समय राना बनवीरसिंह बैठा हुआ है और उसकी कठोरता को आप अच्छी तरह जानते हैं। आपकी गढ़ी को चारों ओर से राना की फौज ने घेर रक्खा है। मैं आप के पास इस कारण से आया हूं कि आप को न केवल सूचना दूं

प्रत्युत सुगमता के साथ देख भाल कर सिपाहियों को दूसरी ओर चले जाने की आज्ञा दूं, क्या आप इस बात के लिए तैयार हैं।"

रामसिंह ने कहा—"मैं तैयार होने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता हूं। राना बनवीर के समय में हम लोगों को समझता ही कौन है। तलाशी तो आप अवश्य लें परन्तु मेरी स्त्री कल से बहुत बीमार है उस मकान में तुम्हारे जाने से उसे कष्ट होगा।"

सवार ने कहा-"मैंने साफ तौर पर आप से कह दिया है कि हमको इस प्रकार की आज्ञा मिली हुई है। इस से अधिक हम और कुछ नहीं कर सकते।"

रामसिंह ने कहा अच्छा चलो देखलो अगर कोई मनुष्य यहां आकर छिपा है तो उस को कैद कराने में मैं कोई कोताही न करूंगा। सवार ने कहा ऐसे मामले में ऐसी जलदी मुख से बात न निकालनी चाहिये लेकिन खैर चलो मैं ही आपकी गढ़ी के प्रत्येक स्थान को ढूंड लूंगा। सवार और रामसिंह दोनों गढ़ी में खोज करने लगे। बैठक देखी, स्नान घर देखा, हयशाला देखा, गोशाला देखा, भंडार घर देखा, सिनागार देखा, दरबार देखा, परन्तु कहीं किसी मनुष्य का पता न लगा। अन्त में सवार रामसिंह के महल की ओर चला जिस में ठाकुरानी बीमार पड़ी हुई तड़फ रही थी। संयोग से उस समय उस के कमरे में कोई बांदी तक भी नहीं थी। दो मनुष्यों को कमरे की ओर आते देख कर बीमार ठकुरानी उठ खड़ी हुई। और क्रोध में आकर कहने

लगी यह कैसी निर्लज्जता है ! तुम क्यों बेगाने मनुष्य को साथ लिए हुए यहां आ रहे हो ? रामसिंह ने संक्षेप के साथ सारा वृतान्त कह सुनाया, स्त्री ने कहा बहुत अच्छा तुम पूर्णरूप से तलाशी करलो।

सवार ने अच्छी तरह से कोना कोना देखा और जब कोई मनुष्य न मिला तो वह उस कमरे से निकल कर आगे बढ़ा।

इतने में रामसिंह की निगाह अंगरखे के एक बन्द की ओर गई, जिस में सलमे सितारे लगे हुए थे। बन्द को देख कर वह चकित रह गया और जल्दी से उस को उठा कर अपनी जेब में रख लिया। और जब राना का सवार तलाशी लेकर गढ़ी के बाहर निकल गया, तो उसने अपनी धर्म्मपत्नी जी से कहा क्या सचमुच यहां कोई मनुष्य छिपा हुआ है ?

ठकुरानी का नाम चन्द्रमुखी था। वह सचमुच बड़ी रूपवती थी। आयु भी अभी सोलहवर्ष से अधिक नहीं थी। उस ने मुस्करा कर कहा तुमने कैसे जाना कि यहां कोई मनुष्य छिपा हुआ है। रामसिंह ने चन्द्रमुखी को वह रेशमी बन्द दिखाया जो उसको भूमि पर पड़ा हुआ मिला था। चन्द्र-मुखी फिर बोली "क्या स्त्रियों के पास ऐसे बन्द नहीं होते ?

रामसिंह को ठकुरानी के इस प्रश्न से आश्चर्य्य हुआ उसने फिर कहा देखो जिस जगह तुम्हारा पलंग बिछा हुआ है उस जगह लकड़ी की एक दीवार बनी है। और उस का तालुक एक सुरंग से है, और वह पहाड़ से बहुत दूर तक चली गई है। मेरे सिवाय और किसी को उस का पता नहीं है तुमने किस प्रकार उसको जान लिया है।

चन्द्रमुखी के मुख पर कुछ भी घबड़ाहट के लक्षण प्रगट नहीं हुए। उस को कुछ भी पता नहीं था कि रामसिंह किस नियत से इस प्रकार की बातें कर रहा है। उसने वे परवाही से कहा "आप खोज कर लेवें यदि कोई छिपा है तो आपही मिल जायगा।

अभी पति पत्नी दोनों की वार्ता समाप्त नहीं होने पाई थी कि नौकर ने ठाकुर रामसिंह जी को फिर एक सरकारी अफसर के आने की खबर सुनाई। उस के साथ वह सवार भी था जो पहले रोज़ खोज कर गया था, राजपूत अपनी बेइज़्ज़ती सहन नहीं कर सकते परन्तु इस अवसर पर विचित्र दशा थी। उस को रंचक क्रोध नहीं आया वह अफसर से मिल कर पूछने लगा आप क्या चाहते हैं ? उस ने उत्तर दिया कि मेरे साथी ने साधारण रूप से तलाशी की थी अब मैं स्वयम् तलाशी करके अपनी तसल्ली करूंगा कि राना का शत्रु आपकी गढ़ी में छिपा है वा नहीं। गढ़ी की फिर दूसरी बार तलाशी की गई, रामसिंह मेवाड़ का एक सरदार था इस लिए फौजी अफसर को उस के सन्मान का भी ध्यान रखना पड़ता था। कई घंटे तक बराबर तलाशी होती रही। अन्त में उस ने कहा ठाकुरसाहब आप हम लोगों को माफ कीजियेगा विवश थे राना की आज्ञा टाल नहीं सकते थे, हमने व्यर्थ आपको कष्ट दिया।

यह कहकर वह दोनों वहां से चले गये, परन्तु उन का भ्रम अभी तक दूर नहीं हुआ था इस लिए सेना के कुछ सिपाहियों को वहां छोड़ दिया और आप आगे बढ़ गए।

उन के चले जाने के पश्चात् ठाकुर रामसिंह फिर अपनी पत्नी के पास आया। उस के मन में तरह २ के विचार उत्पन्न हो रहे थे, और वह इस फिकर में था कि वह किसी प्रकार मिट जायें। उसने अपनी स्त्री से फिर आकर पूछा चन्द्रमुखी सच बता यह कौन आकर छिपा है, चन्द्रमुखी भांप गई कि उसके पति के मन में क्या बात समाई हुई है। उसने मुस्करा कर कहा तुम क्यों बार २ ऐसे प्रश्न करते हो? रामसिंह ने कहा सुन्दरी! इस में किंचित सन्देह नहीं है कि मैं तुझ को हृदयगत भाव से प्यार करता हूं और इस प्रेम ने ही मुझ को अंधा बना कर तेरे साथ विवाह करने को उद्यत किया। मैंने बड़ी भूल की क्योंकि मेरी आयु पचास वर्ष के लग भग है और तू पन्द्रह सोलह वर्ष से अधिक नहीं है। सचमुच यह बड़ी अनुचित बात थी परन्तु मैं प्रेम के कारण अन्धा था मैंने कल रात को स्वयम देखा कि एक मनुष्य गढ़ी की ओर आ रहा है ईश्वर जाने कहां और किधर छिप रहा कि मुझको उसका कुछ पता नहीं लगा। मैं इसी फिकर में व्याकुल हूं और इसी लिए बार २ तुझसे पूछता हूं। यदि तुझको उसका कुछ पता मालूम हो तो कृपा करके बता दे ताकि मैं उसको सुगमता के साथ यहां से निकल जाने का प्रबन्ध करदूं।

चन्द्रमुखी के होंठ तलमलाने लगे उसने पूछा तुम क्यों ऐसा करोगे?

रामसिंह-मैं इसलिए ऐसा करूंगा कि जिसमें मेरी और तेरी बदनामी न हो।

चन्द्रमुखी–क्या तुमको इस बात का निश्चय है कि चन्द्रमुखी पतित और नीच है? आप मेरे स्वामी हैं इस लिए आप जो चाहें सो कहें आपको सब बातों का अधिकार है यदि किसी दूसरे के मुख से यह शब्द निकले होते तो मैं कदापि सहन न करती।

रामसिंह घबड़ा उठा क्योंकि उसने सचमुच बड़ी भूल की थी। इस प्रकार की बात चीत क्षत्राणी के सन्मुख उसे नहीं करनी चाहिए थी। वह लज्जा के भावसे पानी२ हो गया। और गर्दन नीचे करके कहने लगा निदान वह कौन जन था जिसको मैंने अपनी आंखों से गढ़ी में घुसते हुए देखा था।

चन्द्रमुखी–क्या तुम सचमुच उसको देखना चाहते हो

रामसिंह–हां मैं सचमुच उसको देखना चाहता हूं।

चन्द्रमुखी–परन्तु एक शर्त पर उसे देख सकोगे?

रामसिंह–वह क्या है।

चन्द्रमुखी–वह यह है कि आप तीन बार झुककर उसको प्रणाम करें और श्रीमान् व महाराजा कहकर सम्बोधन करें।

रामसिंह यह सुनकर बड़ा क्रोधित हुआ। उसने कहा निर्लज्ज! तू अपने बूढ़े पति के साथ हंसी करती है। यह सिर सिवाय महाराना चित्तौड़ के और किसी के सन्मुख तीन बार न झुकेगा, और न इस मुख से सिवाय महाराना के और किसी दूसरे मनुष्य को श्रीमान् व महाराज कहूंगा तू बहुत देर से मेरे साथ मखौल कर रही है परन्तु स्मरण रख शान्ति की भी कोई सीमा होती है।

यह बात चीत जिस कमरे के भीतर होरही थी उसी कमरे में सुरङ्ग का दरवाज़ा था, जिसका हम ऊपर वर्णन कर आए हैं। जब रामसिंह क्रोध से भर गया और अपनी स्त्री को बुरा भला कहने लगा तो सुरङ्ग का दरवाजा खुल गया और उसके भीतर से एक हथियार बन्द राजपूत एक छोटे से अल्पायु बच्चे को अपनी गोद में लिए हुये निकला और लड़के को सामने खड़ा करके कहा देखो रामसिंह यह तुम्हारा असली राना है यह राना सांगा का अन्तिम पुत्र उदयसिंह है। इसको मैं बनवीर के पंजों से छुड़ा लाई हूं। और इस चिन्ता में हूं कि कोई इस की रक्षा करे।

अधिक कहने सुनने की आवश्यकता नहीं थी उदय-सिंह के रूप रंग से ही प्रकट होता था कि वह राना सांगा का पुत्र है। उसका सारा आकार उसमें वर्तमान था। रामसिंह ने तीन वार झुककर प्रणाम किया और अपनी धर्म्मपत्नी के कथनानुसार उसको महाराज और श्रीमान् के शब्द से सम्बोधन किया। फिर उस हथियार बन्द राजपूत से सविस्तार वृत्तान्त पूछने लगा। उसने अपना वृत्तान्त इस प्रकार वर्णन करना आरंभ किया। ठाकुर साहिब मैं पुरुप नहीं स्त्री हूं। मेरा नाम पन्ना है। मैं महा-राना उदयसिंह की दाई हूं। राना सांगा के मरने के पश्चात् विक्रमादित्य को गद्दी पर बैठाया गया और जब वह भी मर गया और राना के घराने में कोई योधा पुरुष गद्दी पर बैठने वाला न रहा तो सरदारों ने सलाह करके

बनवीर को गद्दी पर बैठा दिया। उसने लोभ के मारे राना सांगा की सम्पूर्ण सन्तान को वध कर डाला। उसकी इच्छा है कि मेरी सन्तान सदैव चित्तौड़ की गद्दी पर राज्य करे। उदयसिंह सांगा का सब से छोटा पुत्र है। परसों मुझको खबर मिली कि बनवीर इसको भी मारना चाहता है। मैंने उदयसिंह को तो एक टोकरे में रख कर नाई के हाथ चित्तौड़ से बाहर भेज दिया और अपने छोटे लड़के को उसकी जगह पर लिटा दिया। रात के समय बनवीर आया और उदयसिंह के धोखे में मेरे लड़के को मार डाला मैं राना सांगा की अन्तिम सन्तान को लेकर भाग निकली। आज तीसरा दिन है इन पावों को आराम लेने का अवसर नहीं मिला। न कहीं अन्न जल प्राप्त हुआ। इस भय के मारे कि इसको कोई हानि न पहुंच जाय मैं रात दिन भागती हुई जङ्गल और पहाड़ लांघती हुई यहां आपहुंची हूं। आप की ठकुरानी साहबा के स्वभाव को मैं पहले से जानती हूं मैं पहले भी इस गढ़ी में आचुकी हूं। मैंने इस नन्हे बालक को ठकुरानी जी की गोद में डाल दिया ताकि शत्रु इसको हानि न पहुँचा सके ईश्वरने यहां तक तो इस की रक्षाकी। अब यह तुम्हारा काम है कि तुम इस आड़े समयमें अपने राना की रक्षा करो। इतना कहने के पश्चात् श्रीमती पन्ना ने राजकुमार उदय सिंह को ठाकुर रामसिंह जी की गोद में बैठा दिया।

उदयसिंह का वृत्तान्त राजस्थान के इतिहास में बहुत ही हृदयदायिक है ठकुरानी चन्द्रमुखीजी, ठाकुर रामसिंहजी

और दाई पन्ना तीनों कुछ देर तक प्रेम के आंसू बहाते रहे संसार की लीला विचित्र है, जिस राना संग्रामसिंह जी के नाम को सुन कर बड़े २ योधा राजे महाराजे कांप उठते थे और हीरे मोतियों की भेंट लेकर अगवानी करते थे, जिन महाराना संग्रामसिंह जी के नाम को सुन कर कावुल और कन्धार के मुगल और पठानादि कांप उठते थे। जो महाराना संग्रामसिंह हिन्दू जाति का सूर्य्य और क्षत्रियों का रत्न समझा जाता था, आज उस को कहीं अपने प्राण बचाने के लिये स्थान नहीं मिलता।

रामसिंह बड़ी देर तक सोच सागर में डूबा रहा, उस को जहां अपनी स्त्री के साथ अपनी नादानी और बदसूलकी पर पाश्चाताप था, वहां उसकी राजभक्ति, पतिव्रत भाव और चतुरता को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। पहले उस ने पन्ना और राजकुमार के लिए उत्तम से उत्तम भोजन बनवाया, और जब वह भली भांति भोजन वा विश्राम कर चुके तो विनीत भाव से समझाकर कहने लगा कि "मेरे बड़े धन्य भाग्य थे कि जो राना संग्रामसिंह जी का पुत्र मेरे घर पर आया। परन्तु हे पन्ना ! तुम जानती हो कि डोंगरपुर एक छोटी सी रियासत है। चित्तौड़ की तुलना में उसकी कोई हकीकत नहीं है और चित्तौड़ के बहुत समीप है। इस के सिवाय बनबीर के आदमी अब तक गद्दी के आस पास घूम रहे हैं। इस लिए उचित है कि तुम इस सुरंग से निकल कर कोमलमेर के किले में चले जाओ। वहां का किलादार आशा है कि तुम्हारी सहायता करेगा'। पन्ना ने स्वीकार किया।

रात के समय चन्द्रमुखी पति की आज्ञा लेकर राजकुमार उदयसिंह और पन्ना दाई को सुरङ्ग के बाहर तक पहुंचा आई और किसी को कानों कान खबर तक नहीं होने दी।

जब पन्ना उदयसिंह को साथ लिए बहुत दूर निकल गई तो चन्द्रमुखी अपने महल को लौट आई और रामसिंह के चरणों में अपना सिर रख कर कहने लगी प्राणनाथ मुझ से बड़ा अपराध हुआ जो मैंने पहिले ही सब वृत्तान्त से आप को अवगत नहीं कर दिया और आप को व्यर्थ भ्रम में पड़ कर कष्ट उठाना पड़ा, मैं अपने अपराध के लिए लज्जित हूं आप जो चाहें मुझको दण्ड देवें'।

रामसिंह के हृदय में चन्द्रमुखी के प्रति पहले से भी अधिक प्रेम भाव उत्पन्न होगया था उसने कहा देवी! तू धन्य है तेरी राज भक्ति को देख कर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूं। तूने जो कुछ किया है सो समयानुसार किया है मैं तेरी क्रिया से कदापि रुष्ट नहीं हूं। वरन मैं तुझको अपने कुल की देवी समझता हूं और जब तक ठाकुर रामसिंह इस संसार में जीवित रहा तब तक कभी भूल कर भी उस ने अपनी धर्म्म पत्नी को कष्ट नहीं दिया, और वह बन्द जो उस को भूमि पर पड़ा हुआ मिला था सो बहुत दिनों तक रामसिंह के घराने में स्मार्करूप (बतौर यादगार) रक्खा रहा।

॥ इति ॥